सिद्धयोग

स्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

अंक : 1
2011

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

अहम् सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधाः भावसमन्विता।।

(गीता 10/8)

मैं (भगवान) ही सबका उत्पत्ति-स्थान हूँ और समस्त जगत् की मुझ (भगवान) से ही प्रवृत्ति होती है, यह मानकर बुद्धिमान् भावसम्पन्न पुरुष अपने (सब कर्मों द्वारा सर्वत्र सदा) मेरा ही भजन सेवन करते हैं।

✳ ✳ ✳

रुचं नोधेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्।।

(यजुर्वेद)

जैसे परमात्मा पक्षपात न करके सभी वर्ग के प्राणियों से समान रूप से प्रीति करता है, वैसे ही हम सब मिलकर, ब्रह्मवेत्ता विद्वान, राजकीय व्यक्ति, व्यवसायी और सेवार्थ प्रदान करने वाले सभी नागरिक परस्पर रुचि और प्रीति पूर्ण व्यवहार करें।

✳ ✳ ✳

तदात्वे चानुबन्धे वा यस्य स्यादशुभं फलम्।
कर्मणस्तन्न कर्तव्यमेतद् बुद्धिमतां मतम्।।

(चरक संहिता)

कार्य करते समय, तत्काल या भविष्य में, जिसका फल अशुभ अर्थात् हानिकारक हो, इसका विचार करके, ऐसे काम कदापि नहीं करना चाहिये। यह बुद्धिमानी का सिद्धान्त है।

✳ ✳ ✳

अवशेन्द्रिय चित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाभरण प्रायो दानं भारः क्रिया विना।।

(हितोपदेश)

जिनके वश में चित्त और इन्द्रिय नहीं है उनकी क्रिया (कर्म) हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है। बिना आचरण किये ज्ञान बोझ के समान है जैसे कुरूप स्त्री के पास आभूषण।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् ब्रहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 44 अंक : 1

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।।
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।।
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।।

ऐसा कोई समय और स्थान है ही नहीं कि जब और जहाँ श्रीभगवान् विराजमान न हों और वे करुणानिधान श्रीभगवान् तो अनन्य प्रेमी की आर्त पुकार से प्रकट होते हैं। अतः हमें उनको ढूंढने के लिए कहीं भी जाने की आवश्यकता नहीं है। हम जहाँ भी बैठे हैं, वहीं से आर्त–भाव और आर्त–स्वर से प्रार्थना करते हुए उन सर्वशक्तिमान् के शरणागत हों तो वे करुणानिधान श्रीभगवान् इसी स्थान पर प्रकट होकर हम सबको अवश्य ही दर्शन देंगे और दारुण–से–दारुण विपत्ति से हमें निस्तार प्रदान करेंगे।

अप्रैल 2011

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – [illegible] महाराज — 3
2. सम्पादकीय — 10
3. श्री सद्गुरु सेवा ही [illegible] – डॉ. विजय सिंह — 14
4. योग में [illegible] — 19
5. अष्टांग योग – [illegible] शर्मा — 26
6. [illegible] — 30
7. [illegible] — 31
8. गुरु स्तवन — 35
9. [illegible] की महत्ता – [illegible] शर्मा — 37
10. श्री प्रभु चरणों में [illegible] – [illegible] कुमार सिंह — 41
11. [illegible] — 42
12. गुरु जी आते हैं... – [illegible] — 51
13. [illegible] – डॉ. [illegible] चतुर्वेदी — 52
14. सिद्धयोग – [illegible] — 55
15. श्री [illegible] – [illegible] चतुर्वेदी — 56
16. [illegible] श्री सिद्धगुरु [illegible] – [illegible] कुमार — 59
17. [illegible] — 62
18. योग-योगेश्वर महाप्रभु श्री [illegible] — 65
19. [illegible] — 69
20. गुरु [illegible] — 72
21. [illegible] — 76

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 270.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

● *हमारा विशेष लेख*

मेरे श्री गुरुदेव

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

मैं अपने श्री गुरुदेव के चरणारविन्द की महिमा किन शब्दों में लिखूँ यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। गुरुदेव एक ऐसा शब्द है जो सभी के लिए मान्य है और हर व्यक्ति जो किसी भी प्रकार से गुरुदेव की शरणागति प्राप्त कर चुका है, उसके लिए उसके गुरुदेव पूर्ण ब्रह्म है। साधक जब तक गुरुदेव के स्वरूप में ईश्वर बुद्धि धारण नहीं करता तब तक वह परम श्रेय के पथ का पथिक नहीं बन सकता। इसलिए भारतीय संस्कृति का ज्ञान रखाने वाली भारतीय जनता अपने–अपने गुरुदेव के चरणारविन्द में पूर्ण ईश्वर बुद्धि रखती है व श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों में न्यौछावर होना अपना परम पुनीत सौभाग्य समझती है। गुरुदेव क्या है और उनका स्वरूप क्या है यह एक पृथक लेख का विषय है, जिसका प्रकाशन इस पत्र के किसी अंक में अवश्य होगा। फिर भी मैं इतना बतला देना उचित समझता हूँ कि गुरुदेव के दो स्वरूप होते हैं, एक उनका अपना निज स्वरूप और दूसरा साधक की श्रद्धा से निर्धारित स्वरूप। जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से श्रीमद् भगवद्गीता के 17वें अध्याय में कहा है:

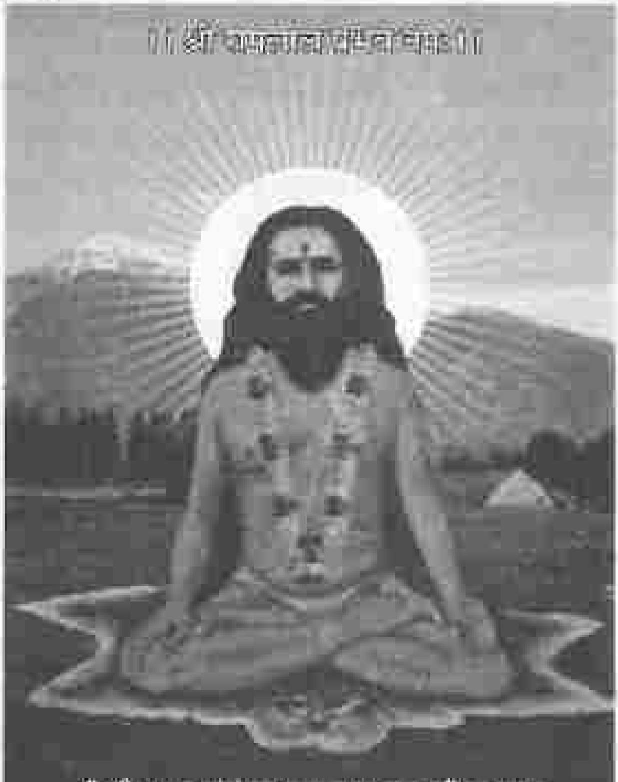

श्री श्री 1008 योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

अर्थात् परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसमें सच्चिदानन्द घन नित्य चेतन का स्वरूप होता है। श्रद्धा साधक के अपने हृदय का पवित्र उद्‌गार है। श्रद्धावान् व्यक्ति जिसके विषय में जो सोचता है वहीं से उसको ईश्वरीय शक्ति मिल जाती है। धन्ना जाट, नामदेव आदि के जितने उदाहरण मिलते हैं वह सबके सब श्रद्धा के ही उज्वल प्रतीक हैं। किसी साधारण व्यक्ति को ईश्वरीय भावना से देखना यह भक्त के हृदय की पवित्र भावना है व ईश्वर का ईश्वर होना उसकी अपनी यथार्थता है। गुरुदेव के विषय में भी सभी आस्तिक लोगों की ईश्वरीय भावना होती है और अपनी भावना के अनुरूप ही वह लोग फल को पा लेते हैं ''यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।'' इसके अतिरिक्त यदि श्रद्धेय पुरुष परिपूर्ण है और साधक श्रद्धा का पुतला है तो अभीष्ट लाभ में कोई शंका का स्थान है ही नहीं। मेरे गुरुदेव जिनके विषय में यह पंक्तियाँ लिखने लगा हूँ, सिद्धों के महा सिद्ध, सर्व समर्थ योगयोगेश्वर व सर्वतः परिपूर्ण हैं। उनकी पवित्र ख्याति को बहुत ही कम लोग जान पाये हैं। सम्भव हो सकता है इस विषय में उनका अपना ही संकल्प हो; किन्तु उनके चरणारविन्दों के चिन्तन करने वाले सर्वसाधारण जन समुदाय के अन्दर जो-जो चमत्कारिक घटनायें घटित होती रहती हैं उनका इस छोटे-से लेख के अन्दर लिखना भी सम्भव नहीं हो सकता।

उनकी पवित्र जन्म भूमि अमृतसर (पंजाब) है। अमृतसर में ज्योतिष विद्या के गण्यमान्य विद्वान् महामान्य पं. गण्डाराम जी ज्योतिषी के घर में उनका पवित्र अवतरण हुआ। लगभग बारह या चौदह वर्ष की आयु तक बाल-क्रीड़ा करते हुए घर पर रहे। उसके बाद तीव्र वैराग्य के भावों से प्रेरित होकर घर से निकल पड़े और कुछ दिन साधु समुदाय के अन्दर घूमते हुए निर्जन वनों में भ्रमण करने लगे। उसमें सब से बड़े आश्चर्य की बात यह थी जहाँ-जहाँ पर कोई पहुँच वाला सन्त मिलता और मेरे गुरुदेव जी के स्वरूप को पहचानता वही गद्‌गद् कण्ठ होकर स्तुति करता और कृपा की भीख माँगता। इन पंक्तियों में मैं अपने गुरुदेव जी के जीवन चरित्र के विषय में कुछ लिखूँ, यह मेरा लक्ष्य नहीं है। फिर भी इतना कह देना तो आवश्यक ही है कि अपने बाल्यकाल में ही वह घटनायें घटीं जो सर्वसाधारण के जीवन में कभी हो नहीं सकतीं। चार साल की उम्र में माता-पिता को दिव्य ज्योति का अनुभव कराना छः साल की उम्र में वृद्धा पड़ोसिन जो मरणासन्नावस्था में थी उसके सिर पर अपने कर-कमल का स्पर्श कर पूर्ण गति का वरदान देना, लगभग 9 वर्ष की अवस्था में अमृतसर के पास रामतलाई पर दर्शनार्थ आने के इच्छुक महात्माओं को स्वयं ही जाकर दर्शन देना, चौदह या पन्द्रह साल की उम्र में वनों को जाते हुए मुरादाबाद की तरफ से निकलते हुए किसी गाँव में किसी कुम्हार के लड़के के सिर पर कर स्पर्श करके दिव्यानुभूति कराना व खेचरी

मुद्रा की पूर्णता का वरदान देना उनके जन्मजात सहज सामर्थ्य का पूर्ण परिचायक है। किन्तु फिर भी लोक–लीला का अनुसरण करते हुए जंगलों में विचरते रहे और अपनी इस वन–यात्रा में कई तपस्वी साधुओं पर परमानुग्रह कर उनको सफल मनोरथ बनाया और अपने आप थोड़े ही समय के अन्दर नेपाल हिमालय को चले गये। नेपाल की राजधानी काठमांडू से ऊपर जहाँ बागमती गंगा का उद्गम स्थान है, वहाँ के कुछ दूर चल कर किसी झारखण्ड में रह कर घोर तपस्या का जीवन व्यतीत करते रहे। उस स्थान पर ही स्वयं सदा शिव स्वरूप एक महापुरुष आये जो मेरे श्री गुरुदेव जी को हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में आकाश मार्ग से ले गये और एक स्थान पर छोड़ दिया। केवल दो एक बातें बतलाई। एक नर–भक्षक जड़ी दिखलाई और कहा कि यह जड़ी नर–भक्षक है, मनुष्य को खा जाती है। दूसरी बात कि तुम यहाँ रहो, यह कह कर वह महापुरुष अपनी गुफा में जाकर के समाधिस्थ हो गये। उस स्थान से 6–6 मील 7–7 मील की दूरी पर कोई–कोई सिद्ध महापुरुष रहते थे। मेरे श्री गुरुदेव विचरते हुए उन लोगों से मिले। उन लोगों ने बताया, यह महापुरुष सदाशिव हैं और कई हजार वर्षों से यहाँ पर बैठे हुए हैं। यही सिद्धियों के दाता स्वयं महासिद्ध हैं और छः महीने में एक बार समाधि से उठते हैं। श्री प्रभु जी मेरे गुरुदेव अपने मुखारविन्द से यह बतलाते थे कि जब तक श्री महाप्रभु जी समाधि से उठे तब तक उनकी अपनी भी कई रोज की समाधि लग उठी थी। इसका अर्थ यही है – ''गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यस्तुछिन्नसंशयाः।'' अर्थात् गुरुदेव का चुपाचुपी का व्याख्यान हो और शिष्यों के संशय स्वतः ही नष्ट होते चले जायें। यही सद्गुरु तत्व की महत्ता है। सामर्थ्यवान् गुरुदेव को बहुत उपदेश करने की आवश्यकता नहीं होती उनका संकल्प ही ''कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुम्'' की शक्ति रखता है मेरे श्री गुरुदेव हिमालय के उन हिमाच्छादित शिखरों पर लगभग 12 वर्ष रहे और फिर संसार के पतित एवं वेदनापूर्ण दुःखी जीवों को देखकर उन दयासागर जी के मन में दया के भाव उमड़े और उन्हें संसार के आधिव्याधियों से पीड़ित दुःखी प्राणियों को पवित्र योग मार्ग का पथ प्रदर्शन करने के लिए श्री कृपानिधि जी भू–मण्डल पर लौट आये। श्री गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से यह कहा करते थे कि हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों पर बैठ करके आधि–व्याधियों से पीड़ित दुःखाक्रान्त जीवों को देखा और उनके भले की भावना पूर्णरूपेण मन में जग उठी, अतः पुनः संसार में आ करके प्राणी मात्र के भले के लिए पवित्र योग–मार्ग के प्रचार का आरम्भ कर दिया–

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् प्रज्ञा–प्रासाद पर आरूढ़ हुए योगिराज संसार वालों को इस प्रकार देखते हैं जैसे पर्वत शिखर पर बैठे हुए व्यक्ति भूमि वालों को देख लिया करते हैं। ठीक इसी उदाहरण के प्रतीक बन कर मेरे श्री गुरुदेव भू–मण्डल पर आये और उन्होंने योग–प्रचार का पवित्र

कार्य आरम्भ कर लिया। श्री प्रभुजी ने अवनी–मण्डल पर आकर तीन प्रकार के कार्य आरम्भ किये:–

(1) योग के सरल साधनों द्वारा रोग निवृत्ति। इसमें भी सबसे विशेष बात यह थी, निज निर्मित साधनों का प्रचार। उनमें उनका एक प्रमुख साधक था, 'जीवन तत्व साधन' इस जीवन तत्व साधन के अन्दर नौ क्रियायें हैं, जिनके करने से लोगों को अद्भुत व आश्चर्यजनक लाभ होता है। इस साधन के अन्दर सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह लगातार विधि–विधान पूर्वक करने से पेट में इस प्रकार की अग्नि पैदा करता है जिसको 'वृक' अग्नि कहते हैं। जिस प्रकार जंगली जानवर भेड़िया को हर समय भूख लगती रहती है, उसी प्रकार इन साधनों के करने से मनुष्य को हर समय भूख लगती रहती है। पेट में एक अग्नि सी धधकती मालूम पड़ती है। यह अग्नि तब तक बन्द नहीं होती जब तक मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्णरूपेण ठीक न हो जाये। इसके साथ–साथ इस साधन के अन्दर एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस साधन को करते हुए बच्चे का ध्यान करने की एक विधि है जिससे मन की एकाग्रता बना स्वाभाविक लाभ होता है और बच्चा दीखने लगता है। इस बच्चे के देखने का आह्लाद हर समय बना रहता है और उससे उसके अधिकांश रोग की निवृत्ति हो जाती है। इसके साथ ही साथ दृढ़तर अभ्यास करने के बाद वही बच्चा श्रीकृष्ण आकृति में बदल जाता है, और साधक का अध्यात्म में प्रवेश हो जाता है। इस साधन का नाम है जीवन तत्व साधन।

'जीवन तत्व साधन' को हमने पुस्तक के रूप में प्रकाशित करा दिया है। इसका सभी को अवलोकन करना चाहिए। इन क्रियाओं के लिए समय का विभाजन इस प्रकार रखना चाहिए :–

(1) सर्वोत्तान – केवल तीन बार समय केवल अधिक से अधिक दो मिनट।
(2) स्कन्ध चालन – समय पन्द्रह मिनट।
(3) पादचालन – आठ मिनट।
(4) नाभिचालन – पन्द्रह मिनट।
(5) जानुप्रसार – दोनों ओर से तीन बार समय लगभग चार मिनट।
(6) बालमचलन – केवल एक मिनट।
(7) बच्चे का ध्यान – पाँच मिनट।
(8) नाड़ी संचालन – पन्द्रह मिनट।
(9) उत्क्षेपण – केवल एक या दो मिनट।

इसी प्रकार यदि क्रियायें अधिक बढ़ानी हैं तो समय अधिक बढ़ाया जा सकता है। सभी प्रकार की बीमारियों में मेरे गुरुदेव के अपने मन से प्रकट किया हुआ यह जीवन तत्व साधन अमृत के समान परम लाभदायक है। इसमें भी बच्चे का ध्यान सब प्रकार से लोक व परलोक

के लिए परम श्रेयस्कर है।

इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा के क्षीण रोगियों के लिए श्री गुरुदेव जी ने अपने मन से अमर तत्व साधन को निकाला।

(2) अमर तत्व साधन– जिसमें केवल क्षीर समुद्र का ध्यान किया जाता है और हाथ–पैरों को इस प्रकार से चलाया जाता है जिस प्रकार हम समुद्र में तैर रहे हों। जो साधक श्री गुरुदेव की परम कृपा से अपने को क्षीर–सागर में तैरते हुए देखने लग जाते हैं, उनका राज–यक्ष्मारोग बहुत थोड़े दिन में दूर हो जाता है और उनको इतनी प्रसन्नता होती है कि उसमें उनकी समस्त बीमारियाँ भाग जाती हैं। और बहुत ही थोड़े दिन के अन्दर अपने आपको पूर्ण स्वस्थ देखने लगते हैं। प्रथम बार श्री गुरुदेव जी यह जीवन तत्व व अमर तत्व आदि साधन ही लोक–हितार्थ कराया करते थे, किंतु कुछ समय बाद नेती, धौति, न्यौली, वस्ति, गजकरणी आदि क्रियायें भी अधिकारी देखकर कराने लगे। इसके अतिरिक्त अन्य आसन, बन्ध, मुद्रायें और विभिन्न प्रकार की गुप्त क्रियाओं का शिक्षण भी आरम्भ कर दिया, यह सबसे बड़ा काम उन्होंने संसार में आकर किया।

(3) शक्तिपात दीक्षा – जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रों में योग का वर्णन दो प्रकार से मिलता है, सिद्ध–योग और साधन योग। साधन–योग में मनुष्य साधन करता–करता शनैः–शनैः अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, और सिद्ध योग में सिद्धानुग्रह से ही मनुष्य का उत्थान हो जाता है और उसकी प्रगति इतनी ऊँची होती है कि जिसे वह अपने पुरुषार्थ से अनेक जन्म में भी नहीं प्राप्त कर सकता। सिद्ध योग के दाता पूर्ण सद्गुरु सिद्ध योगिराज ही हो सकते हैं और वही लोग शक्ति–संचार भी कर सकते हैं। इस 'सिद्धयोग' का प्रारम्भ भगवान् सदाशिव से हुआ। पुराणों में हिमालय के घन–घोर जंगलों में होने वाले एक सिद्धाश्रम की चर्चा मिलती है, जिसमें भगवान् सदाशिव के शिष्य–प्रशिष्य योगाचार्यगण निवास करते हैं, यह सभी लोग महासिद्ध हैं और समय–समय पर संसार में व्यस्त गृहस्थ जनों को सन्मार्ग–दर्शन के लिए संसार में आया करते हैं। यह लोग सर्व समर्थ महापुरुष हैं। यही लोग शक्ति संचार कर सकते हैं। मेरे श्री गुरुदेव भी इन सब की तरह एक अनादि महासिद्ध हैं। उन्होंने संसार में आकर शक्तिपात दीक्षा देनी प्रारम्भ की।

उनके कृपा–फल को प्राप्त कर कितने ही सैंकड़ों की संख्या में साधु जंगलों में समाधि लगा रहे हैं, और तत्व विजयी होकर अपने शरीरों को एक सुन्दर नवयुवक के समान रखते हैं। कितने ही साधु षट् चक्रों का भेदन करके लोक–लोकान्तरों में गमन करने की शक्ति वाले हो गये और स्वायत्ततनु हो कर हिमालय की कन्दराओं में निवास कर रहे हैं। मेरे गुरुदेव योग–योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सन् 1914 के लगभग हरिद्वार के कुम्भ मेले में प्रथम बार हिमालय से उतर कर आये। जिन जीवों के संस्कार उनके चरणारविन्द में उन्हें ले आते हैं या जो इस पवित्र योग–मार्ग के जिज्ञासु हैं उनको पवित्र योग–मार्ग का

अनुयायी बनाकर चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर करना, हरिद्वार कुम्भ मेले के समय उनके अपने संकल्प से ही उनके कुटुम्बी जनों ने उन्हें पहिचाना और साधारण चर्चाओं में ही तर्क वितर्क करने लगे कि महाराज जी आप कहीं पर किसी स्थिति में रहें, अब हम आपको अवश्य ही पहचान लेंगे। श्री महाराज जी ने उन लोगों से कहा कि भाई! हम साधू हैं तुम्हें हमसे आग्रह नहीं करना चाहिए। तुम अपना कार्य करो हम अपना कार्य करेंगे। किंतु वे लोग नहीं बदले। आग्रह करते ही रहे। इसी बीच में उन्होंने आश्चर्य देखा कि उनसे बात करते–करते ही श्री गुरुदेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। वह लोग लाख प्रयत्न करने पर भी उनका अन्वेषण नहीं कर सके। अपनी हठ–धर्मी का दुष्परिणाम पाकर उन सभी को महान् दुःख हुआ। किन्तु उनको यह भी ज्ञान हो गया कि यह हमारे कुटुम्बी भाई बन्धु ही नहीं है किन्तु कोई सामर्थ्यवान् परम योगिराज हैं। श्री गुरुदेव जी की इस प्रभुता को जानकर लोगों ने अत्यन्त विनय की, जिसके फलस्वरूप श्री प्रभु जी वहीं प्रकट हो गये किन्तु एक बालक के रूप में। उस बालक को यह लोग नहीं पहचान सके। सोचते रहे यह कोई 15–16 साल का बालक है। कहीं कुम्भ मेले में आया होगा, हमारे पास आकर बैठ गया है। किन्तु इन लोगों की अनभिज्ञता को देखकर उस बालक के रूप में छिपे हुए सर्व समर्थ सिद्धों के सिद्धेश्वर मेरे गुरुदेव उनसे मुस्करा कर कहने लगे कि भाई तुम किस चिन्ता में हो? किसका अन्वेषण कर रहे हो? उन लोगों ने कहा, ब्रह्मचारी जी! हमारे एक भाई साधू रूप में अभी–अभी यहाँ थे, किन्तु पता नहीं कहाँ चले गये हैं? हमने उनके साथ बड़ा आग्रह किया था, उस आग्रह का हमें भारी पश्चात्ताप है। जब वह लोग यह कह ही रहे थे तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहाँ कोई ब्रह्मचारी नहीं है, प्रत्युत योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलालजी महाराज हैं। इस अद्भुत घटना को देखकर सभी कुटुम्बी जनों ने निश्चय कर लिया कि यह केवल मात्र हमारे कुटुम्बी ही नहीं हैं, किन्तु इस आकृति में छिपे हुए कोई सर्वसमर्थ योगिराज हैं उसके बाद उन्होंने श्री प्रभुजी, के चरणाविन्द में कोई हठ नहीं की और अपने–अपने घरों को लौट गये, कुछ लोगों ने श्री प्रभुजी को अमृतसर ले जाने का हठ किया श्री प्रभुजी की स्वयं अपनी इच्छा थी ही इसलिए वह हिमालय से उठकर के आये। उनके हठ को स्वीकार करके अमृतसर चले गये और वहाँ जाकर कुछ समय के लिए पण्डित वेष में रहने लगे। यह श्री प्रभुजी का गृहस्थ वेष था। इस वेष में उनको कोई पहचान नहीं सकता था। केवल अपने निवास स्थान पर रहते हुए जिस समय वन की बात किया करते थे सुनने वाले समझते थे कि इतने घनघोर जगलों में सम्भवतः नहीं गये होंगे। अचानक इन्हीं दिनों में एक घटना घटी। अमृतसर में हाल दरवाजे से बाहर एक सराय है, जिसको सन्तराम की सराय कहते हैं। उसमें एक परम तेजस्वी देदीप्यमान मुख–मण्डल वाले एक महात्मा आकर समाधिस्थ होकर बैठ गये। वह बिल्कुल नग्न थे। तीन दिन व तीन रात्रि बिना कुछ खाये पिये समाधि स्थिति में वह महात्मा वहीं बैठे ही रहे। सारे शहर में उनकी प्रख्याति फैल गई। दर्शकों की भारी भीड़ उनके पास एकत्र हो गई। श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में जाकर

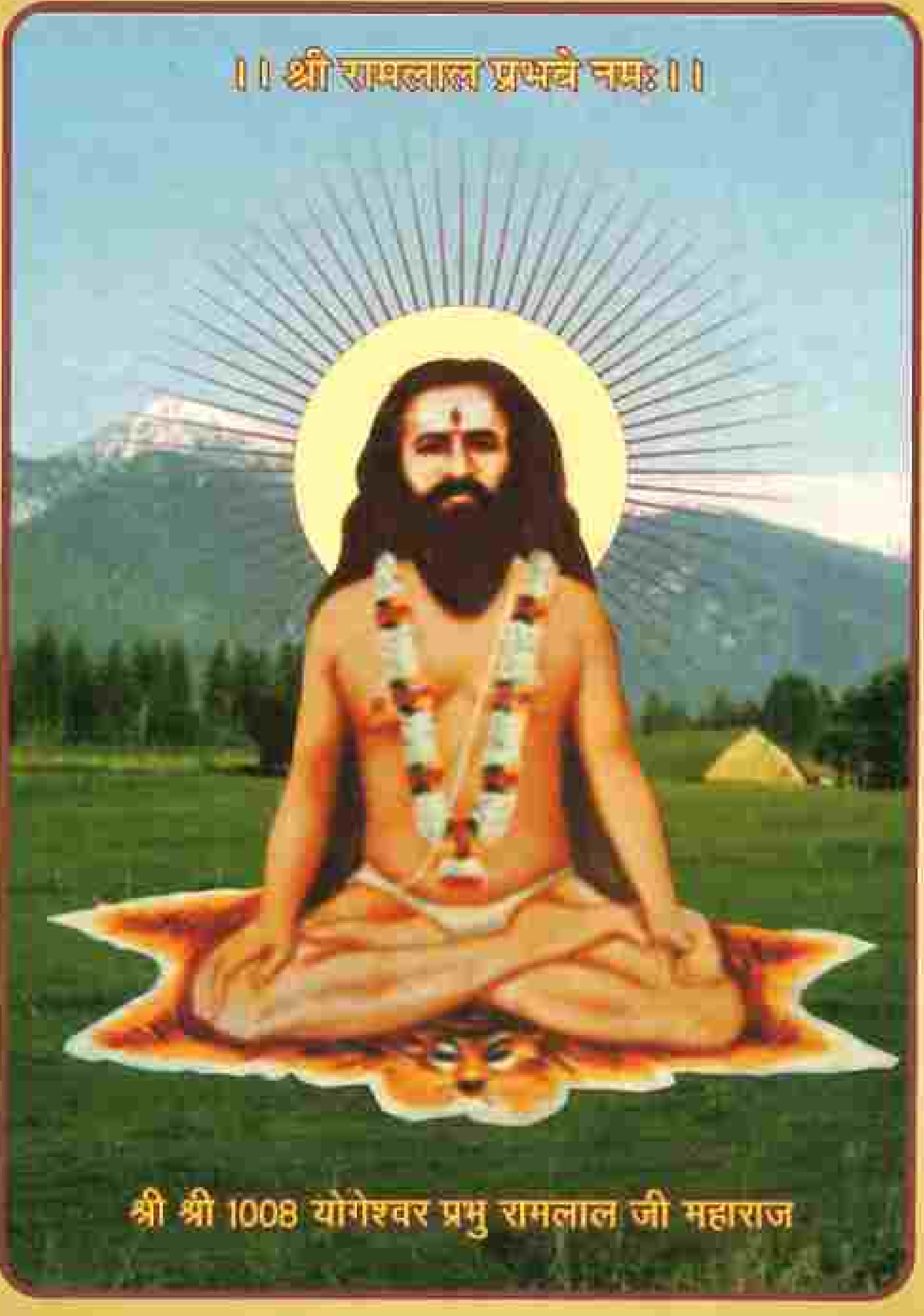

श्री श्री 1008 योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज

गृहस्थी लोगों ने प्रार्थना की श्री महाराज जी! आप बड़े–बड़े जंगलों में हो आये हैं, किन्तु अभी तक आपको इस प्रकार के सिद्ध योगिराज जी नहीं मिले होंगे जैसे महात्मा सन्तराम की सराय में आकर बैठे हैं? वह तीन दिन से बिल्कुल निराहार हैं और पत्थर की मूर्ति की तरह से बैठे हैं, न हिले हैं न डुले हैं। चलिये आपको भी उनके दर्शन करा लावें। श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया, भाई! हमें रहने दो, तुम्हीं दर्शन कर आओ। जब तीन रात्रि से बैठे हैं तो अच्छे तो हैं ही। किन्तु लोगों ने बड़ी भारी हठ की। लोगों के मन में यह भावना थी कि उस महात्मा को देखकर श्री गुरुदेव जी आश्चर्य चकित हो जावेंगे और कहेंगे कि हाँ, यह तो कोई अवश्य सिद्ध योगिराज हैं। किन्तु बात कुछ और ही थी। श्री प्रभु जी उन लोगों के आग्रह करने पर सन्तराम की सराय में गये। जहाँ वह महात्मा समाधि लगाकर बैठे हुए थे, धीरे–से उनके पीछे जाकर खड़े हो गये। लोगों को यह आश्चर्य हुआ कि और लोग सामने खड़े हैं और यह पीठ की पीछे खड़े हैं। थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि महात्मा के शरीर में एक कम्प पैदा हुआ। उस कम्पन के साथ उनके प्राण–कोष ब्रह्माण्ड से नीचे आ गये। महात्मा सचेत होकर जाग उठे और बड़ी तीव्रता के साथ खड़े होकर परम करुणार्णव मेरे श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में गिर पड़े और चरणों से लिपट गये। महात्मा इतने रोये कि श्री प्रभु जी के बहुत समझाने पर भी उनके आँसू बन्द नहीं होते थे। श्री प्रभु जी ने उनको दोनों हाथों से उठाकर कण्ठ से लगा लिया और सिर पर हाथ रख आशीर्वाद देते हुए कहा – बेटा! रोते क्यों हो? मैंने ही तुमको शतपथ से बुलाया है तुम्हारी समाधि अपूर्ण थी, आज से वह पूर्ण हो जायेगी। और तुम्हारी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जायेगी। आकाश–गमन आदि सब ठीक हो जायगा। महात्मा ने बड़ी कठिनता से श्री प्रभु जी से हाथ जोड़ कर प्रार्थना की। प्रभो! हे सर्वशान्तिमान्! मेरे रोने का केवल एक ही कारण है। मैं आपका मन्द बालक हूँ। तीन दिन तीन रात मेरी कठोर परीक्षा के बाद आपने मुझे दर्शन दिये हैं। मैं तड़पता रहा चरणारविन्दों के दर्शन के लिए, किन्तु आपके चरणारविन्द में बहुत से स्त्री पुरुषों का जमघट होने के कारण मैं नहीं आ सका और आप दर्शन देने के लिए नहीं आये। आज मेरा यह शुभ दिन है। पता नहीं मेरे कौन से पुण्य प्रारब्ध से प्राणिमात्र के अन्तर्दृष्टा श्री प्रभुजी! आपने मुझे आकर कृतार्थ किया है। श्री प्रभुजी ने उस महात्मा को कुछ समय अपने पास रखकर हिमालय भेज दिया। जो लोग श्री प्रभुजी के साथ सन्तराम की सराय में गये थे, उनके आश्चर्य का तो कोई ठिकाना ही नहीं रहा। वह लोग भली प्रकार जान गये, इस विप्र वेष में ! छिपे यह अवश्य कोई सर्वसमर्थ महापुरुष हैं। यह पहली घटना थी जिससे कुछ सर्व साधारण लोग मेरे गुरुदेव के स्वरूप को कुछ–कुछ समझने लगे। यहाँ से ही शक्तिपात और सब प्रकार के योग प्रचार का कार्य आरम्भ हुआ। मेरे गुरुदेव ने इस बीच में क्या–क्या कार्य किया, वह शनैः शनैः इस पत्र में प्रकाशित होता रहेगा और पाठकगण समझते रहें कि सद्गुरुदेव कौन होता है और उनके कार्य किस प्रकार के हुआ करते हैं।

परम गुरुदेव योगेश्वर श्री रामलालजी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

योगाचार्य डॉ. रामलाल ब्रह्मचारी

ईश्वर की भांति महायोगेश्वरों का भी जन्म व कर्म दिव्य होता है। इस दिव्यता को जो जानता व समझता है वह भी दिव्य हो जाता है तथा मुक्त हो जाता है। किंतु जन्म कर्म के इन रहस्यों को हर व्यक्ति जान नहीं सकता। दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगीजन ही इन रहस्यों को जानते हैं। योग अमर व अमृत विद्या है, इसी विद्या से मनुष्य बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इस विद्या का समय-समय पर भगवान स्वयं प्रसार करते हैं या इनके ही रूप में योगेश्वर सिद्धयोगी भारत भूमि में विद्यमान रहकर प्रचार-प्रसार करते हैं। मध्य काल के भगवान मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ आदि महासिद्धों ने योग विद्या को प्रचारित कर मानव को परम कल्याण की ओर लगाया है। ऐसे अनादि सिद्ध, कल्पनान्तजीवी, योगदेह से नित्य हिमालय में वास करने वाले परम कारुणिक सिद्ध महापुरुष श्री रामलाल जी महाराज का नाम विख्यात है। आप अपने भक्तों में साक्षात् महेश्वर के रूप में पूजित हैं। आप योगियों के भी योगी सद्गुरु हैं तथा भक्तों की हर अभिलाषा को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष हैं।

आपके विषय में बहुत समय पूर्व ही 'काकनाड़ी संहिता' में आपके योगावतार की भविष्यवाणी की गयी है। आपका परमपावन प्राकट्य गुरुओं की पावन नगरी अमृतसर में विक्रमी संवत् 1845 को चैत्र शुक्ला नवमी बृहस्पतिवार को वृष लग्न में स्वनामधन्य प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् पंडित गंडाराम जी महाराज के यहाँ हुआ। आपकी माता का पवित्र नाम भागवन्ती देवी था। ब्राह्मणों में सारस्वत वंश प्रसिद्ध वंश है। इसी में जोशी वंश में पण्डित साँईदत्त जी हुए। आप बाल्यकाल से ही भगवत्प्रेमी, परम सदाचारी, आस्तिक व आध्यात्मिक विचारों के थे। बचपन में कई बार कई-कई महिनों तक एकान्तवास व अनुष्ठानों में लगे रहते थे। कठोर तप व स्वाध्याय के फलस्वरूप आप में अलौकिक शक्तियों का प्रादुर्भाव हो गया। अपने संकल्प मात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मन्त्रोच्चारण से ही अग्नि प्रज्जवलित कर देना, वर्षा कर देना आदि आदि विभूतियाँ आप में सहज रूप में प्रगट रहने लगी।

आगे आपके दो पुत्र पण्डित कन्हैयालाल व पण्डित सुखदयाल जी हुए। पण्डित सुखदयाल जी बहुत ही दयालु व विद्वान पुरुष थे। इन्हीं परम भागवत पुण्यशील भक्त के यहाँ एक पुत्र ने जन्म लिया, जिनका पावन नाम 'गण्डाराम' रखा गया। आप पंजाब प्रान्त के एक

प्रसिद्ध ज्योतिषी के रूप में विख्यात हुए। आप बड़े तेजस्वी महापुरुष थे, जिनकी ख्याति दूर–दूर तक फैल गयी थी। आपकी तपस्या व साधना का परम सुफल यह रहा कि आपके यहाँ भगवान ने महाप्रभु के रूप में प्रकट होकर वंश को प्रकाशित किया और मानवमात्र का उद्धार किया। सदैव मुक्त, नित्यसिद्ध होते हुए भी वे अपने संस्कारी बच्चों के दुःखद्वन्द्व व ताप को देखकर दयार्द्र होकर नाना शरीर अपनी इच्छा से धारण करते रहते हैं। पिताश्री ने आपका पावन नाम 'रामलाल' रखा। चार अक्षरवाला यह नाम धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष को प्रदान करने वाला है। नित्य कूटस्थ, आत्मस्वरूप में स्थित रहने वाले महायोगी दया से अभिभूत होकर योगी सद्गुरु के रूप में प्रकट होकर दुःख निवृत्ति के एकान्तिक उपाय योग का ज्ञान देते हैं। आपकी शैशवकालीन लीलायें भी परम अलौकिक रहीं। आपके अद्भुत सामर्थ्य को देखकर एक अवतारी के रूप में आपकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी। पाँच वर्ष की आयु में पिताश्री ने पाठशाला में प्रवेश दिलाया। जिनके श्वासों में चारों वेद का ज्ञान समाया हुआ हो उसे अध्यापक भला क्या पढ़ायेगा? अध्यापक भी आपकी अलौकिक प्रतिभा से आश्चर्य चकित थे। संस्कृत अध्ययन के बहाने से आप चौदह वर्ष की अल्पायु में गृह त्याग कर निकल पड़े। सर्वप्रथम आप कुरुक्षेत्र पहुँचे, वहाँ विद्याध्ययन करने लगे।

एक दिन एक छात्र ने एक चमत्कार देखा। एक भयंकर सर्प अपना फन फैलाये आपके ऊपर छाया किये हुए है। उस छात्र ने भय और आश्चर्य से युक्त होकर इसकी जानकारी अपने साथियों को दी। सभी इस अद्भुत घटना को देखने के लिए एकत्रित हो गये। उन लोगों के वहाँ पहुँचने तक वह सर्प अदृश्य हो चुका था। श्री प्रभुजी निश्चिन्त होकर विश्राम कर रहे थे। इस घटना की चर्चा सर्वत्र फैल गयी। कुछ दिन वहाँ रहने के पश्चात् श्री प्रभुजी हरिद्वार चले गये। कनखल में कुछ समय व्यतीत करने के पश्चात् वे काशी चले गये। उन दिनों काशी के समाज में तन्त्र के बल पर अनाचार होता था। 'भैरवी चक्र' जैसे तांत्रिक प्रयोगों से स्त्री–पुरुष को स्तम्भित कर दिया जाता था। प्रभु जी ने ऐसे अनाचार एवं तन्त्र प्रयोगों को अपने योग बल से समाप्त कर दिया और इस प्रकार की कुप्रथा सदा के लिए मिटा दी गयी। आप पर भी कई तांत्रिक प्रयोग हुए किंतु सब निष्फल रहे। तीर्थयात्रा करते–करते आप श्रीवृन्दावनधाम आये। वहाँ समस्त बृज क्षेत्र के दर्शनीय स्थलों का भ्रमण करते हुए दाऊजी होते हुए प्रभुजी आगरा जिले में बरहन पहुँच गये। बरहन में आपके दिव्य रूप एवं योग विभूतियों से प्रभावित होकर कई लोग उनके अनन्य भक्त बन गये। आपके पास आने से ही दुःखी जनों की आधिव्याधि मिट जाती। जिसके लिए जैसा कहते वैसा ही हो जाता था। वहाँ से वे सवाँई गाँव आये। गाँव में ठा. प्यारेलाल आदि बहुत से आपके भक्त बन गये।

अब श्री प्रभुजी के पास लोगों की भीड़भाड़ रहने लगी। वे गाँव के बाहर निवास करते थे। ग्रामवासियों ने इनके लिए एक गुफा का निर्माण कर दिया, जहाँ वे निर्विघ्नतया समाधि में बैठ सकें। यहाँ श्री प्रभुजी दो–ढाई वर्ष तक रहे। अब इनकी इच्छा नेपाल हिमालय जाने की

हुई। इनके भावों को समझते हुए भक्तों ने प्रार्थना की– 'प्रभो! आप हिमालय जाने का विचार त्याग दें। हम आपके बिना अनाथ हो जायेंगे।' श्री प्रभुजी ने कहा– 'हिमालय तो हम जायेंगे ही।'

एक दिन प्रात काल की बेला में चार बजे गुफा से सूक्ष्म रूप से अणिमा सिद्धि के द्वारा बाहर निकल कर आकाश मार्ग से जाने लगे। गुफा का दरवाजा बाहर से बन्द था और वहाँ भक्तजन बैठे हुए थे। आकाश मार्ग से जाते हुए उन्हें ग्राम के एक किसान ने देख लिया। श्री प्रभुजी ने उसे अभयमुद्रा में आशीर्वाद देते हुए कहा – 'हम गुफा वाले बाबा हैं। नेपाल हिमालय को जा रहे हैं।' किसान ने गुफा पर आकर सभी को इसकी जानकारी दी। सत्यता जानकर सभी अत्यन्त दुःखी हो गये। श्री प्रभुजी की आकाशवाणी हुई– 'चिन्ता मत करो, दस–बारह वर्ष बाद फिर आयेंगे।' आप हिमालय में अपने गुरुदेव सदाशिव के पास कई वर्ष रहे। उन्हें उनकी आज्ञा हुई– 'पृथ्वी मण्डल पर जाओ, हमारे बहुत से संस्कारी तुम्हारे द्वारा योगमार्ग में आकर ब्रह्मभाव को पाकर मेरी चिति शक्ति में समा जायेंगे।'

अपने गुरुदेव सदाशिव की आज्ञा मानकर श्री प्रभुजी अवनि मण्डल पर आ गये। अमर विद्या योग के प्रचार–प्रसार के लिए आपने कई आश्रमों की स्थापना की। सन् 1921–22 में ऋषिकेश में योग साधन आश्रम की स्थापना की। आपने बीमार व्यक्तियों के लिए अपने मन से कुछ क्रियायें उद्घाटित की जो 'जीवन तत्व साधन' के नाम से भारत में प्रचारित हुई। आपने लाहौर में, अमृतसर में तथा अन्य कई स्थानों पर आश्रम स्थापित किये। अधिकारी योग जिज्ञासुओं को शक्तिपात की क्रिया से कुण्डलिनी जागरण तथा अन्य रहस्यमय क्रियायें आपके संकल्प मात्र से होने लगी। यही परम्परा 'सिद्धयोग' की परम्परा कहलाती है। इस परम्परा में सिद्धयोगी गुरु की इच्छा से साधक के अन्दर विभिन्न अद्भुत क्रियायें स्वत: ही होने लगती हैं।

आपके मुख्य शिष्यों में योगीराज मुल्खराज जी महाराज, ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज, सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं योगी नृसिंहमूर्ति जी थे। प्रधान शिष्याओं में महात्मा ऋषिदेवी जी तथा माता द्रोपदी देवी प्रमुख हुई। ये सभी महान शक्तिसम्पन्न सिद्धयोगी हुए। इनमें सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने आध्यात्म योग का बहुत प्रचार किया। लाखों साधक ध्यान योग की दीक्षा पाकर योग ध्यान में आरूढ़ होकर योग के परम लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं। श्री प्रभुजी की परम्परा के शिष्य–प्रशिष्य देश विदेश में योग का खूब प्रचार कर रहे हैं। आपने योग जगत को बहुत कुछ दिया, योग समाज आप जैसे महायोगी के दिव्य जीवन पर गर्व अनुभव करता है।

शक्ति का पर्याय योग है। सच्चे अर्थों में यदि योग को आत्मसात् कर लिया जाये तो जीवन दिव्य बन जाता है। योग की अद्भुत क्रियायें तन मन को शुद्ध व पवित्र करती हैं और योगी आत्म साक्षात्कार का अधिकारी बनता है सिद्धयोग परम्परा में साधक सद्गुरु कृपा से

अद्‌भुत क्रियाओं को स्वयमेव करने लगता है। गुरु की अव्यक्त शक्ति से सभी गुप्त क्रियायें होती हैं। श्री प्रभु जी ने अधम प्राणियों को भी तारा है और वे ही कालान्तर में अन्यों को तारने वाले हो जाते हैं। कहा है एक भक्त कवि ने– ***यस्य प्रसादात पतितासुपावना भवन्ति संसार सुतारणा शिवा*** अर्थात् महाप्रभु जी की कृपा से पतित भी पावन बन जाता है। वह दुनिया का तारण हार हो जाता है ऐसी है महाप्रभु की करूणा कृपा। जहाँ–जहाँ भी यह विराजमान हो जाते हैं वहाँ दिव्यता आ जाती है ऐसे में प्रभु के चिन्तन, आराधना करने वाले कल्याण पथ पर आरूढ़ हो जाते हैं। आपने अपने योग साधकों को योग का वास्तविक स्वरूप समझाया है तथा निरंतर ध्यान योग के अभ्यास करते रहने की आज्ञा व प्रेरणा दी है। परम गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज सद्‌गुरु के रूप में सदा प्रकट रहकर शिष्यों के हृदयस्थ अज्ञान ग्रन्थि का भेदन करते हैं। गुरुगीता का निम्न श्लोक दृष्टव्य है–

सच्चिदानंद रूपाय व्यापिने परमात्मने।
नमः श्रीगुरुनाथाय ह्यविद्याग्रन्थि भेदिने।।

अर्थात् श्री गुरुनाथ को प्रणाम करते हैं, जो सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। सर्वव्यापक हैं, परमात्मा हैं, जो अविद्या ग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं। महाप्रभु सद्‌प्रभु रूप में इसी प्रकार से शिष्यों के हृदयग्रन्थि का भेदन करते हैं। आनन्दकन्द करूणा वरुणालय महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का 123 वाँ प्राकट्य दिवस श्री सिद्धगुफा सवाँई धाम में 10,11,12 अप्रैल को धूमधाम से मनाया जा रहा है। भारत व विदेश में जहाँ–जहाँ उनके भक्त व शिष्य हैं, श्री प्रभुजी का यह परम महोत्सव धूमधाम से मना रहे हैं।

"तुम जो कुछ दोगे, वही तुम्हें एक बीज के असंख्य फलों की भाँति बहुत बड़े परिमाण में वापस मिल जायगा। अतः सुख चाहते हो तो सुख दो, प्रेम चाहते हो तो प्रेम का दान करो, हित चाहते हो तो सबके हित की बात सोचो, सम्मान चाहते हो तो सबका सम्मान करो, सद्‌गुण चाहते हो तो सद्‌गुणों का दान करो और संसार में शान्तिपूर्वक रहकर अन्त में अनन्त शान्ति प्राप्त करना चाहते हो तो जिससे जगत् के जीव शान्ति से रह सकें– सहज ही शान्ति को प्राप्त कर सकें ऐसे ही कर्मों का अनुष्ठान नित्य करते रहो। (तुम्हारा कल्याण अवश्यंभावी है।)"

श्री सद्गुरु सेवा ही परिपूर्णता का आधार

डॉ. विजय सिंह, गोरखपुर

सद्गुरुदेव और ईश्वर भिन्न नहीं है। सद्गुरु की कृपा से साधक शिष्य को ईश्वर के साकार एवं निराकार रूप का दर्शन सम्भव होता है। परंतु शिष्य की सद्गुरु में श्रद्धा–भक्ति और धी–शक्ति प्रगाढ़ हो, वैराग्य की अग्नि हृदय में ज्वाला बन कर जन्म–जन्मान्तरों के संस्कार बीज को दग्ध कर रही हो तो सब काम सहज ही बन जाता है। ऐसे ही महाराष्ट्र के संत–योगी श्री एकनाथ जी हो चुके हैं। आपके सद्गुरु भगवान दत्तात्स्वरूप श्री जनार्दन स्वामी है। सद्गुरु के प्रति श्री एकनाथ महाराज कोटिशः धन्योद्गार के साथ निछावर है।

उनका स्वानुभूत सत्य यह है कि गुरु के ध्यान से साधक की काया ब्रह्मभूत हो जाती है। ब्रह्मभूत काया का मतलब है सद्गुरु कृपा से विदेहत्व की प्राप्ति। वे कहते हैं धन्य हैं मेरे सद्गुरु जिन्होंने हमें ब्रह्म–भूषन दिखाया। संसार सागर के विषम विष की ज्वाला से सद्गुरु मुझे दग्ध होने से बचा लिये। मैं तो सद्गुरु का लाड़ला हूं मेरी दुष्टता पर ध्यान न देकर वे अपने प्रेम पथ का पान हमें सदैव कराते हैं।

जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

ब्रह्मस्वरूप सद्गुरु के सानिध्य में मात्र सेवापरायण रहने के कारण शनैः शनैः छः वर्षों में एकनाथ जी को ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ।

एकनाथ जी ने निज मुक्ति की उपेक्षा करके अपने सद्गुरु जर्नादन जी की भक्ति किया। जिनके प्रसाद से भगवान का मिलना खेल हो गया। वे कहते हैं कि मैं भगवत–प्राप्ति का प्रयास नहीं करता तो भी भगवान स्वयं उनके घर में घुस कर अपना दखल जमाते हैं। यह गुरुभक्ति की ही महिमा है।

भगवान श्रीकृष्ण 'श्रीखण्डिया' नाम से सेवक रूप में रहकर बारह वर्ष श्री एकनाथ जी की सेवा में रहे। गीता में कहे अपने वचन 'भक्तिमान मे प्रियो नरः' को चरितार्थ करते रहे। जिन हरि के ध्यान से योगी परम पवित्र बोध को प्राप्त होते हैं वही प्रभु सद्गुरु भक्त एकनाथ जी के गृहस्थ जीवन को सम्भालने हेतु सेवक बनकर पूजा के बर्तन धोने, चंदन घिसने से लेकर श्री एकनाथ जी के कथा–कीर्तन में उनके पीछे एक तारा लेकर वादन करते हुए पूरे बारह वर्ष सेवा परायण रहे। द्वारिका में कोई साधु श्री कृष्ण दर्शनार्थ अनुष्ठान कर रहा था। एक दिन उसे स्वप्न

हुआ मैं आजकल श्री एकनाथ की सेवा में श्री खण्डिया के रूप में पैठण में रह रहा हूँ। वहीं तुम्हें हमारे दर्शन होंगे।

वह महात्मा यात्रा करके श्री एकनाथ जी के पास पहुँच कर अपने स्वप्न वाली बात बताकर प्रार्थना किया कि मुझे श्रीखण्डिया के दर्शन कराने की कृपा करें। आहत हृदय श्री एकनाथ जी श्री खण्डिया को आवाज देते हुए ढूँढ़ने निकले। श्री खण्डिया तो अदृश्य हो गया। एकनाथ जी ने ध्यान मग्न हो सब बात जानी और रोमांचित हो उठे। बारह वर्ष भगवान उनकी सेवा करते रहे और उनको इस बात का भान नहीं हुआ। प्रभु ने स्वयं कहा है योग–माया समावृत:। श्री एकनाथ जी एवं उनकी पत्नी गिरजाबाई प्रभु को पुकारते हुए विकलता पूर्वक रुदन करने लगे। कहा जाता है तब स्वयं भगवान श्री कृष्ण चन्द्र प्रकट हुए और उस अनुष्ठानी ब्राह्मण साधु के साथ एकनाथ जी एवं उनकी पत्नी को दर्शन दिया।

अभंगों में एकनाथ जी बार–बार पश्चाताप प्रकट करते हुए कहते हैं– प्रभु! सद्‌गुरु कृपा से मेरे अन्त:करण में जो आपके प्रति प्रेम उमड़ा। उससे आकर्षित होकर आपने सेवा करके मेरा नाम बढ़ाया। प्रभु! आप कितने उदार और कृपालु हैं। आप नाना प्रकार की गृहकारक सामग्रियों को यत्नपूर्वक जुटाते रहे। मैं आपसे कभी ऋणमुक्त नहीं हो सकता। मेरे वचन का पालन करना, मुझ दास के लिये सब कुछ किया और मैं ऐसा पतित अपराधी हूँ कि मैंने आपसे सेवा लिया।

श्री एकनाथ जी के जीवन चरित्र से गीता का कथन "तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्व देहिकम्" चरितार्थ होता है। योग भ्रष्टों को अगले जन्म में पूर्व कृत साधना का बौद्धिक योग स्वयं मिल जाता है। उम्र की प्रतीक्षा नहीं करना पड़ता है बचपन में ही सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है।

श्री एकनाथ जी का वंश परम्परा भगवत कृपा सम्पन्न रहा है। इनके जन्म के कुछ दिनों के अन्तराल में ही माता–पिता का देहावसान हो गया। पालन–पोषण दादा–दादी द्वारा किया गया। श्री एकनाथ जी बचपन से ही बड़े श्रद्धावान एवं होनहार थे। स्वाभाविक शुचिता, हरिभजन, पुराण कथा श्रवन और देव–अर्चन में इनका मन रम जाया करता था। संस्कृत का अध्ययन, पुराण पठन आदि सहज ही समयानुसार होता रहा। विद्यागुरु के एक बार बताने से ही वह विषय–वस्तु इन्हें सदैव के लिए स्मरण हो जाता था। कहने का तात्पर्य यह कि एकनाथ जी का चरित्र बचपन से ही असामान्य था। उनके अन्दर वैराग्य की ज्वाला धधकती जिससे सामान्य बालकों की भांति खाने खेलने में वे कभी रत नहीं हुए। गाँव के शिवालय में अहर्निश भगवान शिव की आराधना में मात्र बारह वर्ष के वय में जुट गये। एक रात्रि उन्होंने आकाशवाणी सुना 'तुम्हारे सद्‌गुरु देव जनार्दन पंत नामक सत्पुरुष हैं, उनके पास देवगढ़ जाओ वहीं तुम्हें समाधान प्राप्त होगा।'

श्री जनार्दन पंत भगवान श्री दत्तात्रेय के अनुरक्त भक्त शिष्य थे। गृहस्थ तथा

संस्कारानुसार मुसलमान–बादशाह के विश्वासपात्र हाकिम थे। देवगढ़ या दौलताबाद में इनका राजसी ठाट–बाट महल–मुकाम था। बिना घर बताये श्री एकनाथ जी जनार्दन पंत के दर्शनार्थ भूखे–प्यासे, थके–हारे देवगढ़ पहुँच कर सद्गुरु चरणों में अपने को समर्पित कर दिया।

एकनाथ जी लगातार छः वर्षों तक बड़े ही तत्परता एवं श्रद्धा से सद्गुरु जनार्दन स्वामी की अपूर्व सेवा की और उनके अनुग्रह को पूर्णता से प्राप्त हुए। गुरु के जगने से पूर्व जगकर तथा रात्रि में गुरु के पैर दाबे, गुरु के सो जाने पर भूमि पर पायताने स्वयं सोते थे। गुरु की सेवा में ऐसे तन्मय हो जाते कि उन्हें भूख–प्यास की सुधि नहीं रहा करती। इनके चित्त में 'गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म' की भावना थी। इन छः वर्षों में एक बार भी अपने घर पैठण में दादा–दादी का ख्याल नहीं जगा। गुरु–सेवा में ही उन्होंने अपना परम धर्म माना। गुरु की मूर्ति के चिन्तन एवं सेवा–परायणता से उनका देहाध्यास समाप्त हुआ, चित्त शुद्धि होते ही वे गुरु प्रसाद प्राप्त किये। अपने अभंगों में एकनाथ जी कहते हैं– शिष्य को गुरु ही माता–पिता, स्वामी एवं इष्ट देव हैं ऐसा चिंतन करते हुए गुरु बिना शरीर, मन, वाणी और प्राण को अपना न समझ कर उन्हें ही समर्पित करना चाहिए। गुरु का ही अनन्य ध्यान हो। प्यास जल को भूल जाय, भूख भोजन भूल जाय और गुरु–चरण संवाहन करते हुए शिष्य, निन्द्रा, भी भूल जाये। यही परम गति प्राप्त करने का गुरु भक्तों का तरीका है। वे कहते हैं ऐसा करते–करते एकनाथ रहा ही नहीं वह सद्गुरु रूप ही हो गया।

एक घटना

देवगढ़ पर अचानक दस्यु दलों का आक्रमण हुआ। उस समय जनार्दन स्वामी समाधिस्थ थे। द्वार पर एकनाथ जी की चौकीदारी थी। घबराये अन्य सेवकों ने हाकिम श्री जनार्दन स्वामी से मिलकर घटना की सूचना देना चाहते थे। परन्तु एकनाथ जी ने उन्हें कहा चलो मैं आता हूँ यह कहकर युद्ध के समय के पोशाक जो उनके गुरु जनार्दन स्वामी के थे उन्हें पहन कर अस्त्र–शस्त्र से लैस होकर घोड़े पर सवार होकर बाहर निकले। कहते हैं जनार्दन स्वामी के वस्त्र पहने श्री एकनाथ जी ने वीरता पूर्वक युद्ध करके दस्यु आततायियों को मार भगाया। समाधि से उठने पर जब यह वृतान्त औरों से जनार्दन स्वामी ने सुना तो एकनाथ जी को बुलाकर स्नेह पूर्वक स्पर्श करते हुए आज्ञा दिये– बेटे अब मेरी सेवा से हटकर मेरी आज्ञा से देवगढ़ के उस पहाड़ी पर जाकर एक अनुष्ठान करो। श्री जनार्दन स्वामी ने उन्हें मंत्र दीक्षा दिया। एकनाथ जी बताये स्थल पर पहुँच कर योगाभ्यास द्वारा प्राणकर्म करते हुए परात्पर भगवान श्रीकृष्ण के स्वरूप का ध्यान सद्गुरु द्वारा बताये विधि से करने लगे। अल्प काल में ही भगवान श्रीकृष्ण ने दर्शन दिये और भागवत धर्म के प्रचार–प्रसार द्वारा जीवोद्धार का आदेश दिया।

भगवान श्री दत्तात्रेय की कृपा एकनाथ पर

एक बार श्री जनार्दन स्वामी ने सोचा कि एकनाथ को भी भगवान श्री दत्त का दर्शन होना चाहिए। उन्होंने एकनाथ को समझाया कि अमुक पर्वत के ऊपर स्थित कुण्ड पर जहाँ मैं समय–समय पर जाया करता हूँ वहाँ साक्षात् भगवान श्री दत्त आते हैं, उनका रूप बानक क्या होगा कहना कठिन है, अतः हमारे पास जो भी आये उनको ही भगवान श्री दत्त जानना। भ्रमित अथवा भयभीत मत होना।

श्री गुरुदेव के साथ उस एकान्त वनस्थली में एकनाथ जी गये। थोड़े देर में एक मलंग (फकीर) वहाँ पहुँचा जिसका शरीर ताजे चर्म से ढका हुआ था। साथ एक कुतिया थी। आँखें भयंकर रूप से बड़ी और लाल थीं। इस भयानक रूप में आये भगवान श्रीदत्त को देखकर एकनाथ जी थोड़ा चकित हुए। जनार्दन स्वामी ने उन्हें प्रणाम कर आध्यात्म चर्चा में लग गये। मलंग वेषधारी श्री दत्त ने अपना खप्पर देकर स्वामी को कुतिया का दूध दुहने की आज्ञा दी। उसी मिट्टी के पात्र में दुग्ध पान दोनों महापुरुषों ने किया। उपरान्त श्री जनार्दन स्वामी ने उस पात्र को प्रच्छालन हेतु एकनाथ को दिये। एकनाथ जी ने जल से खप्पर भर कर उस जल को गंगा जल रूप में पान किये। हमारा अहो भाग्य यह गुरु एवं परम गुरु का जूठन पान करने को मिला।

मलंग रूप श्रीदत्त ने एकनाथ के पवित्र भाव को देख कर प्रसन्न हुए और उन्हें अपने यथार्थ रूप का दर्शन कराते हुए भव बाधित जीवों को भगवान के शरण में लाने का आदेश दिया तथा उन्हें अपने आलिंगन में लेते हुए दिव्य शक्तिपात किये जिससे उस समय से ही उन्हें गुरु एवं परम गुरु की ऐक्य के साथ स्वयं अपने को भी उनके में ही स्वरूप लयता का बोध हो गया।

साधावया वैराग्य ज्ञान।
मनुष्य देहीं करावा प्रयत्न।
सांगे एका जनार्दना।
अनीक यत्न असेना।।

मनुष्य – देह के होते वैराग्य–ज्ञान की साधना हेतु प्रयत्न करो। सद्गुरु सदैव कहते हैं, इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है।

योग में इंद्रिय संयम

डॉ. जे.पी. शर्मा, पौंटा साहिब जि. सिरमौर (हिमाचल प्रदेश)

हमारा शरीर पंच महाभूत, पाँच कर्मेन्द्रियों, पांच ज्ञानेन्द्रियों, बुद्धि तथा मन से मिलकर बना है। इन्द्रियों को वश में रखना योग साधक के लिए परमावश्यक है। इन्द्रियां अगर स्वच्छन्दगति से भटकती रहीं तो योग कभी फलीभूत नहीं होगा। असंयमित इन्द्रियां साधक का सर्वनाश कर देती है यथा–

देयानि स्ववशे पुंसां स्वेन्द्रियाण्याखिलानि वै।
असंयतानि खादन्तीन्द्रियाण्येतानि स्वामिनम्।।

(गा.ला.का.गु. वि. 5/15)

अर्थात् अपनी इन्द्रियों को वश में रखना चाहिए। असंयत इन्द्रियाँ स्वामी का नाश कर देती हैं। शरीरस्थ इन्द्रियाँ हमारी आत्मा के सेवक तथा औज़ार हैं। इनका कार्य आत्मा की आवश्यकतायें पूर्ण करने तथा सुख देने का होता है। प्राणी के लिए सुख तथा आनन्द देना ही इनका लक्ष्य होता है। इन्द्रियों के सदुपयोग से प्राणी सदैव प्रसन्न तथा सन्तुष्ट रहता है। परन्तु इनके दुरुपयोग से जीवन कष्टप्रद बन जाता है। अतः जीव को सदैव इन्द्रियों के उपभोग में सन्तुलन बनाये रखना चाहिए। असन्तुलित उपभोगों से शरीर में नाना प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो जाया करती है। अतः इन्द्रियों के भोगों में सतर्कता परमावश्यक है। 'भोगे रोग भयं' अर्थात् भोग हमें रोगी बना देते है। भोग काल में इन्द्रियाँ हमें सुख देती प्रतीत होती है जबकि उनकी परिणिती रोग की तरफ ले जाया करती है। मानव अपनी इन्द्रियों का सेवक व गुलाम बन जाता है। यथा–

इन्द्रिन्ह विषयन्ह करि संयोगा। प्रगटै दुख कारन जग भोगा।
आदि अन्तयुत सो थिर नाहीं। रमै न बुद्धिमान तेहि माहीं।।

अर्थात् अखिल ब्रह्माण्ड नायक योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण जी महाराज ने गीता के पाँचवे अध्याय के सूत्र 12 में कहा है, अर्जुन जो ये इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से होने वाले सब भोग है, यद्यपि विषयी पुरुषों को सुख रूप भासते हैं, तो भी दुःख के ही हेतु हैं और आदि अन्त वाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिए हे, अर्जुन बुद्धिमान विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता। 'अति सर्वत्र वर्जते' अर्थात् इन्द्रिय भोगों में मनमानी नहीं होनी चाहिए। बेकाबू वासना प्राणी का नाश कर डालती है। इसलिए आवश्यक है कि हमारी इन्द्रियाँ नियंत्रित रहें तथा किसी भी सूरत में बेकाबू न रहें। अपनी मनमानी करके हमें इधर–उधर न भटकने दें। जब हम आवश्यक

समझो तभी इन्द्रियों का उपभोग करें, तभी हम इन्द्रियों को वश में कर सकेंगे। इन्द्रिय नियंत्रण के कुछ उपाय नीचे दिये जा रहे हैं जो प्राणी मात्र को अवश्य सहायक होंगे–

1. आत्म संयम बनायें– आत्मा सदैव शांति तथा प्रकाश की तरफ ले जाती है। अतः आत्म नियंत्रण ही स्वर्ग का द्वार है। उसके बिना मनुष्य नरक वासी है तथा वह अशांति तथा अंधकार में विलीन है। आत्म संयमी न होने से मनुष्य घोर दुखों को ही भोगता है। अतः हम सभी को आत्म संयमी बने रहना चाहिए। जो व्यवहार आप दूसरों से कर रहे हैं, बार–बार हजार बार सोचिये, अगर वही व्यवहार आपके साथ या आपके परिजनों के साथ हो, तो आप क्या करेंगे? अतः सदैव काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा मद से अपने को बचाने का प्रयत्न करते रहिये।

2. प्रलोभनों से सावधान रहिये– प्राणी को कुमार्ग पर ले जाने के लिए प्रलोभन मुख्य कारण बनते हैं। प्रलोभन एक ऐसा आकर्षक मोह चक्र है, जिसका स्वरूप, आकार, स्थिति कुछ भी निश्चित नही होता, परन्तु फिर भी वह नाना रूपों में मानव को ठगने, पदच्युत कर पथ भ्रष्ट करने को आता है। जीवन में अनेकों तरह के प्रलोभन आया करते हैं, जो प्राणी मात्र को अनियंत्रित करते रहते है जिन्हें जीव समझ नही पाता तथा लालच में पड़कर अपना अहित कर डालता है। प्राणी मात्र की लालसा ऊँचा बनने की स्वाभाविक कामना हुआ करती है। मैं धनवान बनूँ, समाज में मेरा नाम ऊँचा हो, मुझे सब आदर मान दें। मेरे पर सदैव लक्ष्मी की कृपा होती रहे इत्यादि। उन्हीं उद्देश्यों के लिए मनुष्य अवांछित कर्म करने शुरू कर देता है, जैसे रिश्वत लेना, देना कालाबाजारी, चोरी, झूँठ, फरेब, कपट, हिंसा इत्यादि अपना के धन अर्जित करता है। अतः वह दूसरों से ईर्ष्या करने लगता है। अपने को हीन समझने लगता है। दूसरों की बराबरी में आने के लिए स्पर्धा करता है। वही उसके नैतिक पतन का कारण बनते हैं। मुख्यतः प्रलोभन में दो तत्व होते हैं, उत्सुकता तथा दूरी। ईसाइयों के मतानुसार आदि पुरुष एडम (आदम) का स्वर्ग से पतन ज्ञान वृक्ष के फल को चखने की उत्सुकता के कारण ही हुआ था। उन्हें आदेश था कि वह अन्य सब फलों को चख सकते हैं, केवल ज्ञान वृक्ष से दूर रहें। अतः लालच वश उन्होंने ज्ञान वृक्ष के फल को ही चख लिया। इसके लिए ईश्वर ने उन्हें कड़ी सजा दी थी। कहते हैं, 'दूर के ढोल सुहावने' अर्थात् जो चीजें हमसे दूरी पर हुआ करती हैं उन्हें परखने की इच्छा हमें स्वाभाविक हुआ करती है। इन्द्रियों को तृप्त करने के अनेकों साधन अथवा पदार्थ होते हैं जो हमारी पहुंच से दूर होते हैं जिन्हें हम दैनिक जीवन में नही प्राप्त करते तथा जिनका स्वाद हमने नही लिया होता है। अतः उन्हीं की प्राप्ति की लालसा हमें सबसे ज्यादा रहा करती है।

3. मन पर नियंत्रण रखें– हमारे शरीर में दस इन्द्रियों का वास है। ये सभी इन्द्रियाँ स्वतंत्र रूप से कार्यशील नहीं हैं। सारी इन्द्रियाँ मन के वश में होती हैं तथा मन ही इन पर शासन करता है। यथा–

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
मन ही मेरा शत्रु, मन ही मेरा मीत।।

अर्थात् प्राणी मन से जो-जो संकल्प करता है उसी के अनुसार वर्तता है। अगर अपने मन से हार मान गया तो निश्चित हार होगी तथा मन से जीत मान ली तो निश्चय जीत प्राप्त होगी। उसी प्रकार मन शत्रु तथा मित्रवत व्यवहार करता है। स्वस्थ मन में स्वस्थ आत्मा निवास करती है। रोगी होते हुए भी अगर हम मन से स्वस्थ है तो रोग का हमारे शरीर पर कोई प्रभाव नहीं होगा। अतः मन बड़ा बलवान शत्रु है। वासनाओं का इस पर शीघ्रता से प्रभाव पड़ता है। बड़े-बड़े संयमी भी वासनाओं के चक्कर में आकर भ्रष्ट हो जाते हैं। अतः मन को रोक पाना बड़ा दुष्कर कार्य है। यथा-

मन लोभी, मन लालची, मन चंचल, मन चोर।
मन के मत चलिए नहीं, पलक पलक मन और।।

अर्थात् मन लोभी तथा लालची है, मन सदैव चोर की भांति वासनाओं को देखा करता है। मन बड़ा चंचल स्वभाव वाला होता है। इसकी गति बड़ी तेज होती है। अतः मन में जो-जो प्रेरणायें आये, उनका अनुसरण भूलकर भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि मन हर पल, हर क्षण पर बदलता रहता है। प्रमाद में फँसी इन्द्रियों के सुख में स्थिरता नहीं है। इन्द्रियों के सुख, दुःख रूप है। यह अस्थिर तथा क्षणिक होते हैं। यह सुख भी आवरण मात्र ही है। सुख के लालच में मनुष्य उलझता ही जाता है। इन्द्रिय सुख प्राप्त करते-करते जीव कभी तृप्त नहीं होता। इसकी लालसा बनती ही रहती है। अतः मनुष्य की इच्छा शक्ति प्रबल होनी चाहिए। प्रायः कमजोर इच्छा शक्ति वाले प्राणी इन्द्रियों के गुलाम बने ही रहते हैं।

गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है-

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।।

6/36

अर्थात् जिसका मन वश में नहीं हुआ, ऐसे पुरुष द्वारा योग दुष्प्राप्य है और वश में किये हुए मन वाले प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साधन से उसका प्राप्त होना सहज है-यह मेरा मत है। भगवान ने आगे कहा है-

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।

6/26

अर्थात् यह स्थिर न रहने वाला और चंचल मन जिस-जिस शब्दादि विषय के निमित्त से संसार में विचरता है, उस-उस विषय से हटाकर यानी रोककर इसे बार-बार

परमात्मा में लगावें। अतः मन को वश में करने के लिए अभ्यास और वैराग्य बड़े सहायक होते हैं।

4. वासनाओं पर नियंत्रण के लिए आध्यात्मिक चिन्तन करिये:– प्राणी मात्र वासनाओं का भंडार होते हैं। लगभग वह वासनाओं के दास बने होते हैं। वासनाओं से पीछा छुड़ाना सहज काम नहीं है। विषयी लोगों को निरन्तर सत्संगति तथा आध्यात्मिक चिन्तन की तरफ बढ़ना चाहिए। काम वासना पर सबसे पहिले ध्यान देना चाहिए। काम वासना शक्तिशाली होती है। कामुक व्यक्ति संसार में कुछ भी नहीं कर सकता। अपनी पत्नि के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों को सद्‌बुद्धि से देखना ही परम धर्म होता है। भार्या तो एक ही होती है। अतः दूसरों को भाभी, बहन, माता, चाची इत्यादि समझना चाहिए।

राग का हथियार रमणी है। यदि राग को दूर कर दें तो वासनाओं पर आसानी से विजय पायी जा सकती है। जब सेनापति मर जाय तो सिपाही आसानी से मर या भाग जाया करते हैं। क्रोध को ज्ञान से तथा संयम द्वारा शान्त किया जा सकता है। क्रोध में क्षमारूपी अस्त्र बड़ा लाभकारी होता है। मन जहाँ–जहाँ भटके उस ज्ञानरूपी अंकुश से बार–बार प्रभु चरणों में लगाने का प्रयत्न करें। प्रभु स्मरण तथा प्रभु के नाम स्मरण का बड़ा प्रभाव होता है। बड़ी शाँति मिलती है। मन: को विचारों से शून्य कर दें, तो सारी बाधायें ही समाप्त हो जायेंगी।

5. आवेशों से बचना चाहिए:– अपने मन को आवेशों से सुरक्षित रखना ही इन्द्रिय निग्रह का मूल मंत्र है। मनुष्य के अन्दर मन में तरह–तरह के तूफान उठते–बैठते रहते हैं, जिन्हें आवेश कहा जाता है। आवेशों के कारण मन का सन्तुलन बिगड़ जाता है जिससे प्राणी के शरीर का तापमान कभी ऊँचा तो कभी नीचा हो जाता है। अतः व्यक्ति उच्च या निम्न रक्तचाप का रोगी बन जाता है। ऐसी हालत में ठंडा पानी पिला दिया जाय तो शरीर में काफी शान्ति मिलती है। आवेश क्षणिक होते हैं परंतु कभी–कभी बड़े घातक हो जाते हैं। अतः इनकी अनदेखी नहीं करनी चाहिए। संकल्प–विकल्प चलते रहते हैं। अतः व्यर्थ के चिन्तन से सदैव बचना ही श्रेयष्कर है। ईश्वर पर भरोसा रखना ही अच्छी दवा है। आध्यात्मिकता के सभी ग्रन्थों में मन को रोकने, चित्तवृत्तियों को एकाग्र करने, मन को वश में करने का पग–पग पर आदेश किया है। यथा–

हानि लाभ जीवन–मरण, यश अपयश प्रभु हाथ।

अर्थात् जीवन में हानि, लाभ, जय, पराजय, मान, अपमान, जन्म तथा मृत्यु सब परम पिता परमात्मा के अधिकार में हैं। प्राणी इसमें कुछ भी नहीं कर सकता। गीतामें 2ḷ15 द्वारा कहा गया है। यथा–

जो समान दुख सुख दोऊ मानी। संयत धीर पुरुष विज्ञानी।
इन्द्रिय विषय व्यर्थहिं नहिं जेहीं। अर्जुन सुगम मोच्छरहि तेहीं।।

अर्थात् हे पुरुष श्रेष्ठ! दु:ख–सुख को समान मानने वाले जिस धीर पुरुष को ये इन्द्रिय और विषयों के संयोग व्याकुल नहीं करते, वह मोक्ष के योग्य होता है। अत: आवेशों से बचना ही योग में सफलता है।

6. मनोवृत्तियों का सद्‌पयोग:– प्राणी अगर हानि पहुँचाने वाले आवेशों से मुक्त रहते हुए अपनी मनोवृत्तियों का उपयोग करे तो हानि होने के बजाय, मनोवृत्तियाँ हितकर लाभकारी सिद्ध हो सकती हैं। इस संसार में सभी प्राणियों को भली तथा बुरी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। अत: सभी मनोवृत्तियों को सही अपेक्षा से देखें। सदा शुभ सोचें तथा किसी के बारे में बुरा कदापि न सोचें। भगवान किसी का बुरा नहीं सोचते। जन्मजात मनोवृत्तियां बड़ महत्वपूर्ण तथा उपयोगी हुआ करती हैं। प्राणी अगर उनका सदुपयोग कर ले तो वह अपना जीवन अत्यन्त सुख तथा शान्ति पूर्वक व्यतीत कर सकता है। परंतु असावधानीवश तथा दुर्भाग्य से जीव उनका भली प्रकार से उपयोग करना नहीं जानता इसी कारण कष्ट उठाता रहता है। प्रत्येक प्राणी में दो तरह की मनोदशा हुआ करती हैं। बाहरी मन की मनोवृत्ति, शैतानी लक्षण की होती है जबकि अन्तर्मन की देव प्रकृति वाली होती हैं। जब चोर, चोरी के लिये चलता है, तो उसका अन्तर्मन उसे चोरी करने को धिक्कारता है, डराता है, भय दिखाता है। सोचता है अगर पकड़ा गया तो तेरी जेल हो जायेगी, अपमान होगा, परंतु उसका शैतान मन उसे चोरी करने को उकसाता है। तरह–तरह के प्रलोभन में डालता है। अत: लालच में आकर चोरी करता है। उसकी बुद्धि भी अपना विवेक खो बैठती है। उसे चोरी में ही भलाई तथा सुख की अनुभूति होती है। अत: जीव अपनी इन्द्रियों का सदुपयोग करना सीख ले तो सर्वत्र सुख ही सुख है। काम वासना कोई झूठी अथवा बुरी चीज नहीं है, परंतु इसका सही समय पर सही साथी के साथ उपभोग किया जाय परंतु दुरुपयोग न किया जाय, इसमें कुछ भी बुरा नहीं है। सद्‌गृहस्थ में अगर कामवासना न होगी तो परिवार कैसे बढ़ेगा। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गुरु वशिष्ठ, व्यास, गौतम, भारद्वाज, अत्रि, विश्वामित्र, च्यवन ऋषि इत्यादि सभी अच्छे सद्‌गृहस्थ थे। काम सेवन सीमित सन्तानोत्पत्ति हेतु सदैव सुख कारक माना गया है। अति सर्वत्र वर्जते। फिल्म जगत की चकाचौंध ने, सिनेमाघरों ने काम वासनाओं का दुष्प्रचार बड़े वेग से किया है। बढ़ते कच्चे मन वाले बच्चे जब कामोत्तेजक चित्र देखते हैं, उनके अन्तर्मन में सजीवरूप संग्रहित हो जाते हैं, जो बच्चों की मनोदशा को असंतुलित कर देते हैं। अत: उसका परिणाम आज आप सर्वत्र देख–सुन रहे हैं।

क्रोध भी एक क्षणिक उत्तेजना होती है। आक्रमण करने से पूर्व अथवा छलांग लगाने से पूर्व हमें साहस बटोरना होता है, तभी आक्रमण करने में तथा छलांग लगाने में सफलता मिलती है। आपको बताये बिना अगर पीछे से कोई धक्का दे, दें तब आप छलांग नहीं लगा पायेंगे तथा गिर जायेंगे। अत: क्रोध को अगर हटा दिया जाय तो बुराइयाँ दूर नहीं हो सकेंगी। सीता हरण के कारण राम को क्रोध न आता तो दुष्ट रावण कैसे मारा जाता? इसी प्रकार

मामा कंस के अत्याचारों के कारण भगवान श्री कृष्ण को क्रोध न आता तो कंस कैसे मारा जाता? अंग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध क्रोध न दिखाया जाता तो आज भारत आजाद न होता। अतः क्रोध बुरा नहीं अपितु इसका दुरुपयोग बुरा है।

लोभ मनुष्य के क्रियाशीलता की निशानी है। अगर हममें उन्नति करने की इच्छा न हो तो हम क्या उन्नति कर सकेंगे। अतः लोभ न होगा तो हमें इच्छा भी नहीं होगी। लोभ अपनी इच्छा से सदैव जुड़ा होता है। अतः लोभ जीव की उन्नति का मूलमंत्र है। विद्यार्थी, पहलवान, ब्रह्मचारी, व्यापारी, मजदूर, किसान, तपस्वी, दानी, सत्संगी, योगी इत्यादि सभी अपनी–अपनी उन्नति के लोभी है।

अच्छे कार्य करने के लिए लोभ बुरा नहीं है, जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता हो अगर वह उस वस्तु का संचय कर लेता है, उसे उस वस्तु का लोभी माना जायेगा। परंतु उसके संचय करने से दूसरे लोगों को, समाज तथा देश को हानि होती है। ऐसा लोभ करना निश्चय ही बुरा कहा जायेगा। अतः लोभ का दुरुपयोग ही बुरा है। अपने खाने–पीने में कमी करने का लोभ भी बुरा है। शिक्षा पर धन व्यय करना अच्छा माना जायेगा। अतः लोभ की मूल प्रकृति जानना अति आवश्यक है।

अपने बच्चों से परिवार से सभी मोह करते है। मोह के कारण ही परिवार चल रहे हैं। प्राणी में मोह न होता, क्या संसार चल पाता? हर जीव में अपने बच्चों के लिए मोह व्याप्त है। पक्षी भी अपने चूजों के मुँह में दाना डालते है। पशु भी अपने बच्चों को दुलारते–चाटते है तथा शान्तभाव से दूध पिलाते हैं। प्राणी निर्मोही नहीं हो सकता। जैसे बच्चा समर्थ होता जाता है, मोह भी धीरे–धीरे कम होता जाता है। मोह में पवित्रता छिपी होती है। प्राणी में ममता का भाव अगर न हो तो परिवार टूट जायेंगे। मोह–ममता से ही हम अपने कर्तव्यों से जुड़े हुए हैं।

मद, मत्सर, अहंकार इत्यादि सब बुरी वृत्तियों से सम्बंधित हैं। प्रभु के चरणों में झुकना, प्रेम करना, पूजा करना सब सात्विक मद हैं। क्षमा करना, भूल जाना, अनावश्यक बातों की ओर से उपेक्षा करना एक तरह का मत्सर है। आत्म ज्ञान को, आत्मानुभूति को, आत्म गौरव को अहंकार कहा जा सकता है। अतः इस रूप में यह वृत्तियाँनिन्दा करने योग्य नहीं है। मानव प्राणी प्रभु की अद्‌भुत कृति है, इसमें कई तरह की विशेषतायें भरी है। निन्दनीय कुछ भी नहीं है। इन्द्रियाँ हमारे शरीर में अति महत्वपूर्ण अंग है। उनकी सहायता से हम अपना जीवन निर्वाह करते हैं जिससे हमें आनन्द–सुख की प्राप्ति होती है। पुण्य परमार्थ लाभ तथा जीवन की उन्नति में इन्द्रियाँ सहायक होती है। इन्द्रियाँ शरीरस्थ मन के शासन में रहती हैं। अतः अगर मन स्वस्थ है तो इन्द्रियाँ अनुशासित रहेंगी। अतः प्रयत्नपूर्वक हमें अपने मन को स्वस्थ तथा सशक्त बनाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए, तभी हम इन्द्रियों पर संयम रख पायेंगे।

7. अस्वादवृत से इन्द्रिय संयम:– जीव को अपनी जिव्हा का गुलाम नहीं बनना

चाहिए। कहते हैं पेट पापी होता है। इसे तो खाने को चाहिए नहीं तो शरीर के अन्य अंग हड़ताल कर देते हैं। अपना–अपना कार्य करना बन्द कर देते हैं। हमारी जीभ, रसेन्द्रिय होती है। षटरस व्यंजनों का स्वाद सर्व प्रथम जिव्हा ही करती है। स्वाद का ज्ञान जीभ से होता है। सदैव एक सा खाना खाने से प्रायः अरुचि होने लगती है। अतः स्वाद बदलने को जीभ लालायित बनी रहती है। कभी चटपटा, तीखा, खट्टा, मीठा इत्यादि अनेकों तरह के रस जिव्हा को आकर्षित करते हैं। अतः हम जीभ का गुलाम कदापि न बनें तथा जीभ के ऊपर अपना अधिकार बनायें। इन्द्रियाँ हमारी दोस्त नहीं अपितु शत्रुवत व्यवहार करती हैं। प्रायः देखा गया है कि रोगी अपनी रुग्णता के समय तरह–तरह के व्यंजन खाने को माँगता है। अगर उसे इच्छानुकूल खाना दे दिया जाता है तो उसका रोग और बढ़ जाया करता है। अतः अपनी बुद्धि विवेक से संयम रखना आवश्यक है। हमारी जीभ की स्थिति 'चम्मच' की तरह होनी चाहिए 'चम्मच से चाहे हलवा खाओ अथवा दाल–भात, चम्मच पर मीठे, नमकीन इत्यादि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सारांश में लौकिक और पारलौकिक सफलता अपनी जिव्हा पर निर्भर होती है। खाने में लालच नहीं करना चाहिए। लालच मनुष्य को बुरा बना देता है–

'जब दाँत थे तो चने नहीं थे, अब चने हैं तो दाँत नहीं है।'

अर्थात् भाव है कि प्राणी खाने में समर्थ था तो खाद्य सामग्री का अभाव बना रहा तथा समर्थ होते हुए भी इच्छित खाद्य सामग्री नहीं खा सका। अर्थात् खुशहाली जब आई, तब खाद्य पदार्थ उपलब्ध है। तब रोगी होने के कारण खाने में लाचार है। अगर रोग की दशा में खाता है तो रोग बढ़ने तथा मृत्यु का भय सता रहा है।

8. ब्रह्मचर्य से इन्द्रिय संयम:– ब्रह्मचर्य की महिमा अमोघ है। सभी ने इसकी भूरी–भूरी प्रशंसा की है। ब्रह्मचर्य के कारण ही हमारे पूर्वजों ने बड़े–बड़े कार्य किये हैं। ब्रह्मचर्य की शक्ति महान है। ब्रह्म मार्ग के अनुचर को ही ब्रह्मचर्य कहा गया है। ब्रह्मचर्य का यह मतलब कदापि नहीं है कि सर्वदा काम का परित्याग कर दें। हमारे धार्मिक ग्रंथों में तो एक सद्गृहस्थ, जो केवल सन्तान हेतु पत्नि का उपभोग करता है, को भी ब्रह्मचर्य कहा है। ब्रह्मचर्य व्रत पालन में निम्न बातों की आवश्यकता है–

(1) आत्म संयम : अपनी शक्ति संचय करना ही ब्रह्मचर्य है। हर प्राणी में सृष्टि उत्पादक एक महान पौरुष द्रव्य होता है जिसका निर्माण शरीरस्थ रक्त तथा पारद से होता है। जिस शरीर में यह संचित हुआ करता है, वह शरीर तेजस्वी, प्रतिभा सम्पन्न, ओजस्वी होता है। उसका चेहरा आभामण्डल (औरा) से देदीप्य मान बना रहता है।

(2) सादगी : लोग कहा करते हैं– 'सादा जीवन उच्च विचार' अर्थात् हमारा जीवन बिल्कुल सादा, सरल, ढोंग रहित, आडम्बर हीन होना चाहिए। हमारी सोच, व्यवहार, कर्तव्यता, निष्ठता, सत्यपरख होनी चाहिए।

(3) विचार शक्ति : मनुष्य के विचार 'सत्याधारित' होने चाहिए। जो हम कहें वही हम करने की चेष्टा करें अर्थात् 'जो बोलें सो तोलें।' भाव शुद्ध हों। सबके साथ मित्रवत व्यवहार करें। बच्चों को प्रेम करें, बड़ों का सम्मान करें। नारी से सद्व्यवहार करें। उसे समाज में यथा योग्य स्थान दें। कहा गया है– **'यत्र नारी पूज्यते, रमते तत्र देवता।'**

9. संयम और सदाचार की महिमा : आहार तथा विहार से प्राणी की पवित्रता का ज्ञान हो जाता है। सात्विक आहार लेने वालों के सात्विक विचार होते हैं ऐसी मान्यता है तथा मांस, मदिरा का सेवन करने वाले उग्र, तमोगुणी स्वभाव के होते हैं। इसीलिए कहा गया है– 'आहार शुद्धो सत्वशुद्धि' अर्थात् जिसका खान – पान शुद्ध सात्विकता से परिपूर्ण है, उस प्राणी का शरीर सुगठित तथा स्वस्थ पाया जाता है। अपितु तामसिक आहार सदैव हिंसायुक्त तथा उष्ण प्रकृति के होते हैं जो मनुष्य को अनेकों विकारों से परेशान करते रहते हैं। अतः जिन लोगों का खान–पान शुद्ध होता है, वह अक्सर शील स्वभाव तथा परमार्थवादी विचारों से परिपूर्ण होते हैं। तामसिक व्यक्ति कभी भी परमात्म प्रेमी नहीं हो सकता। जो परमात्मा में प्रेम करते हैं, वे हिंसा नहीं किया करते। इसीलिए कहा जाता है, 'जैसा खाये अन्न, वैसा ही मन' अर्थात् मनुष्य जैसा खाना खाता है उसी के अनुरूप उसके विचार बन जाया करते हैं। महाभारत में वर्णन आया है कि आहार शुद्धि के ही कारण भगवान श्री कृष्ण जी महाराज ने दुर्योधन का मेवा मिष्ठान से युक्त भोजन छोड़कर, महात्मा विदुर के घर में 'साग' के साथ भोजन करना उचित समझा। दुर्योधन के भोजन में, झूँठ, फरेब, धोखा, स्वार्थ भाव जुड़े थे जब कि महात्मा विदुर सात्विक भाव से समर्पित थे। यज्ञ, दान, तप, जप इत्यादि चरित्र निर्माण बनाने में सहायक होते हैं। गीतामें श्रीकृष्ण भगवान ने कहा है–

चंचल हि मन: कृष्ण प्रमाथि बल वद्दृढम।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम।।

6/33

मन बड़ा चंचल है, गतिशील और बदलता रहता है। इसको वश में करना बड़ा दुश्कर है, फिर भी ज्ञान रूपी अंकुश से इसे अपने वश में किया जा सकता है।

शरीर से परे इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियों से परे मन है, मन से परे बुद्धि है तथा बुद्धि से परे आत्मा है। अतः बुद्धि रुपी ज्ञान के द्वारा मन को वश में करना चाहिए, जब मन वश में हो जायेगा, तो इन्द्रियाँ स्वयं ही संयमित हो जायेंगी क्योंकि इन्द्रियाँमन के शासन द्वारा कार्य करती हैं।

परम पूज्य सद्गुरु भगवान के पावन चरणों में कोटि–कोटि मेरा प्रणाम तथा सभी गुरु भाईयों को सादर जय गुरुदेव।

अष्टाङ्ग योग

प्रो. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

परमात्मा ने संसार का पालन-पोषण करने के लिए ही कर्म विधान बनाया है। यद्यपि संसार की रचना मायिक (आरोपित) है, फिर भी मायिक रचना में भी क्रम देखा गया है। उदाहरण के रूप में पर्दे पर चलचित्र का संसार आरोपित होता है। उसका आधार तथा कारण जिस पर आरोपित है वह प्रकाश किरणें हैं जो पर्दे पर संसार में दिखाई नहीं देती तथापि इस संसार को पर्दे पर दिखाने के लिए क्रमशः प्रोजेक्टर तैयार किया जाता है, उस पर मूवी की फिल्म लगाई जाती है, उसका विद्युत कनेक्शन किया जाता है, तब प्रकाश किरणों को माध्यम बनाकर प्रोजेक्टर को गति दी जाती है, तब वह मायिक संसार पर्दे पर आता है। इसी प्रकार परमात्मा ने भी क्रमबद्ध हमारे संसार की रचना की तथा इन्द्रियाँ रूपी पर्दे पर मनरूपी प्रोजेक्टर से संस्काररूपी फिल्म को बुद्धि के प्रकाश में दिखाया यानि मूल अव्यय प्रकृति से उत्पन्न हिरण्यगर्भ (प्राण), पंच तन्मात्रायें, पंच भूत, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, देवगण, अन्नादि की रचना की गयी। उपनिषदों में इसका वर्णन दिया गया है। भगवान श्रीकृष्ण का कथन है कि इस संसार में यज्ञरूपी कर्म के द्वारा ही कामनाओं की पूर्ति होती है, क्योंकि-

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्तु इष्टकामधुक्॥

कांक्षतः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥

अर्थात् हिरण्यगर्भ ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना करके यज्ञों का भी उसी के साथ विधान किया और उन्हें शक्तिसम्पन्न किया कि मनुष्य यज्ञों के द्वारा अपनी ईष्ट कामनाओं की पूर्ति कर सकेंगे। इसीलिए मनुष्यों के पृथिवी लोक में देवताओं की यज्ञ के द्वारा आराधना करके शीघ्र इच्छित भोगों की प्राप्ति हो सकती है, क्योंकि कर्म ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है और ब्रह्म अक्षर परमात्मा से प्रकट हुए हैं, अतः यज्ञादि कर्मों में सर्वत्र परमात्मा का ही वास है और वही कर्मफलों का शासनकर्ता कर्माध्यक्ष है।

पारमार्थिक सत्य यही है कि यह प्रकृति परब्रह्म परमात्मा की महिमा है जिसमें परमात्मा स्वयं गुप्त है तथा सर्वव्याप्त है। जिस प्रकार सर्वव्याप्त आकाश में गुप्त शब्द से नाना विज्ञान प्रकट होता है उसी प्रकार सर्वव्याप्त परमात्मा में गुप्त माया से ही सूक्ष्म तथा स्थूल

सृष्टियों का निर्माण होता है। श्रुतिशास्त्र का प्रमाण है कि –

सर्वगे तु निराधारे चैतन्यात्मनि संस्थिता।

अविद्या द्विगुणां सृष्टिं करोति आत्मावलम्बनात्।।

अर्थात् अविद्यारूपी माया सर्वव्याप्त सर्वाधार सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा में उसी प्रकार स्थित है जैसे कि अग्नि में ऊष्णता। यही जगदम्बा महामाया ही प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार इन्द्रियाँ तथा पंच तन्मात्रादि सूक्ष्म सृष्टि तथा पंचभूतात्मक संसाररूप स्थूल सृष्टि का निर्माण करती है। यही अनन्त गुणविकारों तथा देहाध्यासजनित अनन्त भावों का निर्माण कर कर्माशय की रचना करती है। किंतु कल्पित जीवभाव की यह विडम्बना है कि –

प्रकृते: क्रियामाणानि गुणै: कर्माणि सर्वश:।

अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।

तत्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयो:।

गुणा: गुणेषु वर्तन्ते इति मत्वा न सज्जते।।

अर्थात् हमारा शरीर प्रकृति के तत्वों से बना है तथा उसकी कार्यक्षमता भी प्रकृति द्वारा प्रदत्त ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, मन तथा बुद्धि के कारण है और यह सभी प्रकृति के गुण तथा उनके क्रमविकारों से निर्मित हैं। उनकी कार्यशक्ति भी परमात्मा की चैतन्यशक्ति से प्राप्त हुई है। किंतु भ्रान्तिज्ञान के कारण शरीर के अहंकार से मोहित जीवात्मा अपने को कर्ता समझती है, जबकि आत्मज्ञानी पुरुष यह निश्चितरूपेण जानते हैं कि केवल प्रकृति का ही कार्य व्यापार संसार के रूप में दीख रहा है। किंतु जैसा यह संसार दीखता है ठीक वैसा ही स्वप्न का संसार भी दीखता है। अन्तर केवल इन्द्रियों का है। स्वप्न के संसार को अन्तश्चित्त की इन्द्रियाँ देखती हैं तथा इस संसार को बहिश्चित्त की बहिर्मुखी इन्द्रियाँ देखती हैं। वस्तुत: दोनों ही चित्तकल्पित हैं। वेदवाणी इसकी पुष्टि करती है कि

सप्रयोजनता तेषां स्वप्ने विप्रतिपद्यते।

तस्मात् आद्यन्तवत्त्वेन मिथ्या एव खलु ते स्मृता:।।

अर्थात् पदार्थों की प्रयोजनता स्वप्न तथा जागृत अवस्थाओं में समान है, क्योंकि जागृत में भूख–प्यास से तृप्त चित्त स्वप्न में अतृप्त देखा गया है, उसी प्रकार स्वप्न में तृप्त चित्त जागृत में अतृप्त देखा गया है। दोनों अवस्थाओं के पदार्थों का आदि तथा अन्त समान देखा गया है तथा अपने–अपने काल में एक सत्य तथा दूसरा मिथ्या हो जाता है। यही चित्त की अवस्था पर निर्भरता दोनों जगत का मिथ्यात्व सिद्ध करती है। शास्त्र का भ. प्रमाण है कि–

अनिश्चिता यथा रज्जु: अन्धकारे विकल्पिता।

सर्पधारादिभि: भावै: तथा आत्मापि विकल्पिता।।

अर्थात् सत्यस्वरूप का ज्ञान न होने के कारण जिस प्रकार अन्धकार में रज्जु में

सर्पादि के भाव तथा भयादि विकार कल्पित हो जाते हैं उसी प्रकार अविद्या दोष के कारण आत्मा में ही अविद्या ने संसार को कल्पित कर दिया है। यह संसार परमात्मा की लीलामात्र है और अपने आपको ही संसार के रूप में प्रकट करना परमात्मा की अतिविचित्र महिमा है, यह द्वैत तथा अद्वैत के रूप में अपने को प्रकाशित करना भी परमात्मा का स्वभाव है। वेदों में स्वयं परमात्मा ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि—

कल्पयति आत्मनात्मानं आत्मा देवः स्वमायया।

सः एव बुध्यते भेदान् इति वेदान्तनिश्चयः।।

लोकाननीशत् ईशनीभिः प्रत्यंकजनान् च तिष्ठति।

संचुको चान्तकाले संसृज्य विश्वभुवनानि गोपाः।।

अर्थात् परमात्मा ने अपनी माया के द्वारा अपने को ही जीवात्माओं के रूप में प्रकट किया है। परमात्मा की यह महामाया अविद्या तथा विद्यास्वरूपिणी है, तभी तो अविद्या के वशीभूत जीवात्मायें अपने स्वरूप को भूलकर संसारबन्धन में विवशता का अनुभव करती है तथा परमात्मा ज्ञानस्वरूप होकर माया का मायावी है और स्वयं प्रकृति के सभी रहस्यों को जानता है। वही अपनी वैष्णवी शक्तियों से मायाजनित सभी लोकों पर शासन करता है, प्रत्येक शरीर में अन्तरात्मा के रूप में स्थित है, प्रलयकाल में समस्त जीवसृष्टि को अपने सर्वव्यापक स्वरूप में लीन कर लेता है तथा पुनः सृष्टि की रचना कर उसकी रक्षा भी करता है। इसीलिए जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने बताया है कि संसार बन्धन से मुक्ति का यही उपाय है कि—

'तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्यते यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी'

अर्थात् संसारबन्धन से मुक्ति के लिए उसी परमात्मा की शरण में जाना चाहिए जिसके द्वारा इस मायामय सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है। यही एकमात्र उपाय है जिसकी भगवान श्रीकृष्ण अपने मुख से पुष्टि करते हैं कि—

दैवी हि एषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

अर्थात् मेरी माया के गुणकर्मविभाग से मुक्ति पाना जीवात्मा के लिए अत्यन्त दुष्कर है। जो साधक भक्तिपूर्वक मेरा आश्रय लेते हैं उन्हें ही माया पर विजय प्राप्त होती है। यह माया परमात्मा की वह शक्ति है जिसके स्वभाव में ज्ञान, बल तथा क्रियात्मक शक्ति अन्तर्निहित होती है। इस महामाया का गुणविधान तथा कर्मविधान भी परमात्मा की सत्यसंकल्पशक्ति के आधीन सुनिश्चित होता है। जब तक जीवात्मा में भोगासक्ति की वासना चित्त में संस्काररूप में विद्यमान है तब तक जन्म मृत्यु तथा लोकान्तरगमन की विवशता बनी रहती है, क्योंकि—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।

स्थाणुमन्ये अनुसंयान्ति यथा कर्म यथा श्रुतम्।।

अर्थात् सभी जीव कर्मफल के वशीभूत तथा वेदों के धर्म तथा अधर्म के विधान के अनुसार देहाध्यास के कारण भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म लेते हैं अथवा अन्न, औषधि तथा जड़ पदार्थों के रूप को प्राप्त करते हैं। उन्हें अपने परमात्मस्वरूप का ज्ञान न होने के कारण अज्ञान के अन्धकार में भटकना अवश्यंभावी है। भगवान श्रीकृष्ण का भी यही कथन है कि –

सत्वं रजस्तम: इति गुणा: प्रकृतिसम्भवा:।

निबध्नान्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।।

अर्थात् शरीर में वास करने वाली अविनाशी अन्तरात्मा को प्रकृति से उत्पन्न तीन गुण – सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण ही शरीरधारी योनियों में बाँधकर रखते हैं। इन्हीं गुणों के प्रभाव में कर्मबन्धन का मायाजाल निर्मित होता है जो ऐसा चक्रव्यूह है कि कोई भी जीव सर्वज्ञ परमात्मा की कृपा के बिना इससे बाहर नहीं निकल सकता। जिस प्रकार मकड़ी अपने शरीर से ही तन्तु उत्पन्न कर जाला का निर्माण करती है और कार्य सम्पादन कर अपने शरीर में ही लीन कर लेती है, जिस प्रकार पृथिवी से पेड़-पौधे तथा औषधियाँ प्रकट होती हैं तथा जिस प्रकार शरीर से बाल प्रकट होते हैं, उसी प्रकार अक्षर परमात्मा से ही सृष्टि प्रकट होती है और उसी में लीन हो जाती है। जिस प्रकार अग्नि से ज्वालायें प्रकट होती हैं, उसी प्रकार परमात्मा से ही आत्मतेज से युक्त प्राणादि अनन्त भाव प्रकट होते हैं और उन्हीं से मूर्तवान संसार तथा सूक्ष्म संसार की स्वत: रचना हो जाती है। वेदवाणी इस तथ्य की पुष्टि करती है कि –

लोकानां व्यवहारार्थं अविद्या इयं विनिर्मिता।

एषा विमोहनी इत्युक्ता द्वैताद्वैतस्वरूपिणी।।

एवं बुध्वा जगत्रूपं विष्णोर्मायामयं मृषा।

भोगासंगात् भवेत् मुक्त: त्यक्त्वा सर्वविकल्पनाम्।।

अर्थात् परमात्मा ने इस अविद्यारूपी माया की रचना संसार के प्राणियों के व्यवहार तथा जीवनयापन के लिए की है और अज्ञानवश शरीर तथा विषय भोगों में आसक्ति हो जाने से जीवभाव में अन्तरात्मा भ्रमित हो गयी है तथा आत्मज्ञ अन्तरात्मा अपने सर्वव्यापी स्वरूप को जानकर परमानन्द स्वरूप में लीन हो जाते हैं। इसीलिए परमात्मा की मायारचित मिथ्या सृष्टि का ज्ञान होने पर चित्त को मिथ्या जगत के संकल्प-विकल्पों से मुक्त कर तथा भोगवासना को सबीज नष्ट कर कर्मबन्धन से मुक्त हो जाते हैं। यही परम पुरुषार्थ है तथा यही आध्यात्मिक सिद्धि कही जाती है। यही गुणातीत स्थिति है जिसमें जीवभाव नष्ट हो जाता है तथा परमात्मभाव प्रकट हो जाता है।

मैं योगी तेरे द्वार का ...

रचयिता : ब्रह्मचारी बृजमोहन वशिष्ठ वामनी आश्रम

मैं योगी तेरे द्वार का
जन्म जन्म कई बार का
भटक रहा था संसार में
बेसुध हो तेरे प्यार में
तुम बिन मैं मझधार था
मैं योगी तेरे द्वार का ... (1)

वृन्दावन से धाम में
मस्त हुआ तेरे नाम में
मुझे खींची इस बार था
मैं योगी तेरे द्वार का ... (2)

गुरुदेव बन घनश्याम ने
खींचा संवाई धाम में
यह उन का साक्षात्कार था
मैं योगी तेरे द्वार का ... (3)

अब अनासक्त भाव से
काम करता चाव से
दिल से न कोई परिवार था
मैं योगी तेरे द्वार का ... (4)

कर्म योग बतलाया गुरुदेव ने
चरण कमल चिपटाया गुरुदेव ने
यह नहीं कोई संयोग था
मैं योगी तेरे द्वार का ... (5)

अगला भी वायदा किया
शिक्षा को बतला दिया
साथ रहने का इकरार था
मैं योगी तेरे द्वार का ... (6)

जन्म कर्म च मे दिव्यम् - मेरे गुरुदेव का दिव्य स्वरूप

अशोक शर्मा , दिल्ली

श्री मद्भगवद्गीता में जगदात्मा अखिलात्मा परब्रह्म स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण ने अपने बारे में यह बात अर्जुन को लक्ष्य करके समस्त जीवों के कल्याणार्थ कही कि मेरा स्वरूप अन्य जीवों के भांति मैं दिखता तो हूँ साधारण मनुष्य की ही तरह परन्तु मेरा प्रत्येक जन्म और कर्म दिव्य है, असाधारण है, जीवों से सर्वथा भिन्न है। जीव अपने प्रारब्ध के वशीभूत होकर कार्य करते हैं संस्कारों का भुगतान करने के लिए कार्य करते है। परन्तु मैं कर्म बंधन से परे हूँ क्योंकि मैं प्रकृति से परे, त्रिगुणात्मका माया के प्रपंच से परे सर्वथा गुणातीत हूँ। मैं इस सृष्टि का कर्ता और कारण दोनों हूँ।

सद्गुरु सत्ता और परब्रह्म परासत्ता पर्याय है। क्योंकि परमात्मा जो कि सृष्टि के करण–कारण हैं वह सत्ता अपना ज्ञान, अपना अनुभव जिस स्वरूप के द्वारा कराती है वह सद्गुरु है। उसका अनुभव प्रकृति जनित गुणों से आबद्ध इंद्रियों के अनुभव की क्षमता से परे का विषय है। अर्जुन ने जब प्रार्थना की कि हे प्रभो यदि संभव है तो मुझे अपने स्वरूप का दर्शन कराने की कृपा करें। भगवान श्रीकृष्ण ने यह उत्तर दिया कि अर्जुन अपने इन प्राकृत चर्म चक्षुओं से तू मेरे उस स्वरूप का 'दिव्य स्वरूप' का दर्शन करने में सर्वथा अशक्य है, असमर्थ है। मैं तुझे दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ और तू मेरे उस महाविराट स्वरूप को देख।

अर्जुन उवाच–

एवमेतद्यात्थ त्वामात्मानं परमेश्वर। द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम।।3।।

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो। योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्।।4।।

श्री भगवानुवाच–

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा। दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।।8।।

श्री मद्भगवद्गीता अध्याय–11

मेरे मन में रह–रह कर यह भाव कुछ दिनों से आ रहे थे कि अपने नवागन्तुक भाई–बहनों के कल्याणार्थ एवं अपने–अपने आत्मसुख के लिए मैं सद्गुरु भगवान योग–योगेश्वर योगियों के परमेश्वर चन्द्रमोहन जी महाराज के दिव्य स्वरूप को दर्शाने वाली उनकी दिव्य लीलाओं का वर्णन करूँ ताकि हम सब इस बात को किंचितमात्र समझ सकें कि जो चरण–कमल हमें आश्रय स्वरूप मिले हैं, सत्य तो यह है कि उन्होंने हमें अपने श्री चरण–कमलों में आश्रय देकर अपना लिया है। वे कौन हैं? अहा क्या कहा है– **''मेरा गुरुब्रह्म है न्यारा। कोई जाने – जाननहारा।।''**

मेरे बड़े गुरु–भाई आदरणीय डॉ. विजय सिंह जब भी सिद्ध गुफा सवाई में मिलते हैं, मुझसे यह आग्रह करते हैं कि भाई अशोक कुछ अपने अनुभव लिख कर सिद्धयोग पत्रिका हेतु प्रकाशनार्थ दो। बात सत्य कही कि हमारे शरीर आने–जाने वाले है। मेरे बड़े गुरुभाई श्री सद्गुरु सत्ता में लीन श्री रमेश चन्द्र दीक्षित जी और श्री भुवनेन्द्र झा के बाद लगने लगा कि यह इस प्रकृति का कटु सत्य है अतः मेरे मन में यह हूक प्रभु प्रेरणा से उठने लगी कि अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार 'स्वान्तः सुखाय' उन कृपानिधान की कुछ कृपा की लीलाओं की झलकियों का वर्णन करने का प्रयास करूँ।

अतः सद्गुरु भगवान उस परब्रह्म सत्ता का ही वह स्वरूप है जिसके द्वारा वह अपने स्वरूप का हमें ज्ञान कराती है।

'सो जाने जाहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हहि हो जाई।।'

प्रथम घटना – सन् 1980 के दशहरा पर्व की है मेरी सगाई होनी थी। पुराने सभी गुरु–भाईयों को यह तथ्य विदित है कि मेरा विवाह गुरुदेव भगवान की प्रेरणा से ही पवित्र योगियों के कुल में पूज्य मास्टर हरप्रसाद जी की पौत्री और पं. रामेश्वर दत्त जी जिन्हें गुरुजी प्रेम से 'रमेश' के नाम से पुकारते थे की सुपुत्री सौभाग्यवती निर्मल से हुआ था। गुरुदेव ने हमारे पिता जी पं. राधेश्याम शर्मा (जिन्हें सभी गार्ड साहब नाम से जानते हैं) को यह बात 1977 के चण्डीगढ़ के प्रोग्राम में और ऋषिकेश में भी पुनरावृत्ति करते हुए कहा कि अशोक के लिए लड़की मैंने देख रखी है अतः तुम इसके विवाह के लिए अन्यत्र लड़की मत देखना। यह उनका असीम प्यार था। अतः झांसी के प्रोग्राम के दौरान ही मेरी सगाई होना निश्चित हुई थी। सम्भवतया अक्टूबर 1980 का समय था। इस अवसर पर हमारे पूज्य पिता जी ने सीपरी बाजार में स्थित अजन्ता स्टूडियो के फोटोग्राफर से कहा भाई आपको हमारे यहाँ अमुक दिन मेरे लड़के की सगाई का दिन है, हमारे गुरु महाराज भी पधारेंगे आपको फोटो खींचनी है। फोटोग्राफर महोदय ने पूछा आपके गुरु कौन हैं? हमारे बाबू जी ने संक्षिप्त परिचय देते हुए बतलाया कि हमारे गुरु आगरे के पास श्री सिद्ध गुफा सवाई वाले योगिराज श्री चन्द्र मोहन जी महाराज हमारे गुरु जी हैं। वह तपाक से बोला मैं नहीं जाऊँगा किसी और को देख लो। बाऊजी बोले क्यों क्या बात है? उसने जो उत्तर दिया वह हृदय को गद्‌गद् करने वाला है। वह बोला कि जब–जब मैंने पिछली भी इनके प्रोग्राम का फोटो कवरेज किया सबकी फोटो आ जाती है पर कैमरे से उनकी फोटो खींचने पर ब्लैंक अर्थात् खाली आ जाती है मेरी फोटो की रील भी बेकार जाती है और मेरा आज तक सभी प्रयासों का यही परिणाम अनुभव रहा है। अतः आप कोई अन्य फोटोग्राफर कर लें। मैं बिल्कुल नहीं जाऊँगा। यह बात बाबूजी ने हमारे बड़े गुरुभाई श्री ईश्वरी प्रसाद खड्डर जी (जिन्हें हम सभी बाबा कहते थे) जब बतलाई तो उन्होंने कहा भाई उससे कहदो वह आवे जरूर और फोटो–कवरेज ले और यदि इस बार भी गुरुजी की फोटो नहीं आई तो उसका नुकसान हम भर देंगे पर प्रोग्राम की फोटो कवरेज

उसको ही करना होगा।

सगाई वाले दिन श्रीमान् फोटोग्राफर आये। उन्होंने फिर कहा कि मैं आ तो गया हूँ पर मुझे विश्वास है कि आपके गुरुजी की फोटो कैमरे से खींचना सर्वथा असम्भव है।

बात यथार्थत: सत्य है उस परम सद्गुरुदेव के स्वरूप की छवि को देखना और फोटो खींचना प्रकृति जनित कैमरे के लिए कैसे सम्भव है? हमारे गुरुभाई श्री खड्डर साहब ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हे प्रभो! इस शुभ अवसर पर हमारी इच्छा है कि आप अपना फोटो खींचने की कृपा प्रदान करें। जैसा कि हम जानते हैं ऐसा कहने पर श्री गुरुदेव जी ने प्रसन्न होकर कहा कि हाँ लल्ला एक–दो क्या जितनी इच्छा हो उतनी फोटो लो और फिर उस फोटोग्राफर महोदय ने प्रभु चरणों में शीश झुका कर निवेदन किया महाराज जी आज से पहले जब भी मैंने प्रोग्रामों में आपकी फोटो खींचने का प्रयास किया, मेरा प्रयास असफल ही रहा, रील खाली ही रह जाती थी जबकि आस–पास की सभी वस्तुओं और लोगों की फोटो आ जाती है। गुरुदेव ने मुस्कराकर पुन: कहा लल्ला तुम निश्चित होकर फोटो खींचो। तब सभी फोटो बड़ी अच्छी आई। वह सभी फोटो की एलबम अभी भी सुरक्षित है।

दूसरी घटना – 13 फरवरी 1981 को प्रात: ब्रह्ममुहूर्त की है। जब 14 रतन नगर, करौल बाग में स्थित मेरी ससुराल से विवाह के पश्चात् हमारी विदाई हो रही थी। कमरे में दीवान पर विराजमान श्री सद्गुरुदेव जी के चरण कमलों में हम दोनों (मैं और मेरी पत्नी) ने प्रणाम किया और गुरुदेव भगवान ने हमें दिव्य आशीर्वाद प्रदान किया। उस दिव्य लीलाधारी की दिव्य कृपा के इस क्षण को कैमरे में आबद्ध करने के उद्देश्य से दिल्ली के फोटोग्राफर महोदय ने फोटो खींचा।

आश्चर्य – परम आश्चर्य! गुरुदेव भगवान के कृपा कर कमल का पूरा स्वरूप फोटो में है, हम दोनों हैं परंतु गुरुदेव भगवान के दिव्य स्वरूप के स्थान पर केवल मात्र तेज और दिव्य प्रकाश है। सामने से खींची गई फोटो में हाथ तो आ गया पर शरीर गायब। यह फोटो भी हमारी एलबम में सुरक्षित है।

तीसरी घटना – स्थान हमारे बड़े गुरुभाई डॉ. ललित मोहन शर्मा जो कि रेलवे में डॉक्टर थे। उनके बंगले पर विजयादशमी पर्व पर गुरुदेव जी का जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। आरती के पश्चात् फोटोग्राफर ने फोटो लिया तो गुरुदेव के स्वरूप का स्पष्ट फोटो आया पर साथ ही उनके दिव्य शरीर के साथ चारों ओर प्रकाश पुंज का आवरण भी फोटो में आया। यह फोटो भाई ईश्वरी–प्रसाद जी के यहाँ पूजा गृह में रखा था। सम्भवतया अभी भी हो। डॉ. ललित मोहन शर्मा तो अब नहीं हैं पर हो सकता है उनकी बिटिया बहिन आभा जी के घर पर भी वह फोटो सुरक्षित रखा हो। उस समय के गुरुदेव भगवान के पंचामृत स्नान का जल खराब नहीं हुआ वह कई वर्ष तक झा भाई के पास सुरक्षित था। मैंने उसका कई वर्ष बाद भी झा साहब से आग्रह कर कुछ बूंदों का रसास्वादन किया। जबकि उसे 2–4 दिन बाद ही सड़

जाना चाहिए था परन्तु वह दिव्य पंचामृत पूर्णत: सुगन्धि और सुस्वाद से आपूरित था।

चौथी घटना – दिनांक 29 जनवरी 2007 स्थान सद्गुरुदेव जी का निवास कक्ष गुरु भवन। पलंग पर गुरुदेव जी का छाया–चित्र विराजमान है। बड़ी ही सुन्दर मनोहारी छवि है। बेटे की शादी 28 जनवरी 2007 को मेरे बड़े गुरुभाई पं. शिवराम शर्मा जी की सुपुत्री सौभाग्यवती रमा और मेरे सुपुत्र चि. विवेक के विवाह के उपरान्त हम बारात के साथ एत्मादपुर से विदाई के बाद दर्शनार्थ गुफा पर गये। हमारे साथ राज स्टूडियो, शालीमार बाग, दिल्ली से दो फोटोग्राफर शादी की कवरेज के लिए साथ थे। हमने इस उद्देश्य से कि फोटोग्राफर द्वारा खींची गई फोटो अधिक अच्छी होगी, फोटोग्राफर से कहा बेटा 2–3 फोटो इस स्वरूप की लेना। उसमें से जो भी सबसे अच्छी फ़ोटो होगी एक फोटो को बड़े आकार में अपने घर में मंदिर के लिए बनवायेंगे। हमारे बार–बार आग्रह करने पर उस फोटोग्राफर ने कहा अंकल जी इस कैमरे से सबकी फोटो खिंच रही है, पर जब मैं गुरु जी की फोटो खींचने का प्रयास करता हूँ तो कैमरे का बटन क्लिक ही नहीं करता है। उसने यह करके दिखलाया। बात सत्य थी।

उस समय गुरुभवन में मेरे चाचा श्वसुर पं. श्री विष्णुदत्त शर्मा जी भी उपस्थित थे वे तुरन्त बोले अरे ऐसे फोटो कैसे आ जायेगी। पहले बेटा इन्हें प्रणाम करो। फिर दादा गुरुदेव जी महाराज महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की और फिर गुरुजी की फोटो खींचो। हम सभी ने गुरुदेव से अपना फोटो खिंचवाने की प्रार्थना की और प्रणाम किया। फोटोग्राफर ने फिर 3 फोटो खींची। तीनों बड़ी सुन्दर आई। वह फोटोग्राफर इस घटना के अनुभव से कह उठा मान गये यहाँ महाशक्ति विराजमान है।

सिद्ध गुफा में नित्य विराजित मेरा सद्गुरु प्यारा।
है प्रत्यक्ष सदाशिव शोभित संकट मोचन हारा।।

मेरा गुरुब्रह्म है न्यारा।

यह है गुरुदेव के दिव्य स्वरूप की झलकियाँ, जिनमें यह सत्य उद्घाटित होता है कि हमारे सद्गुरुदेव जी का दिव्य योगेश्वर स्वरूप का अनुभव उनकी ही कृपा से किसी भाग्यशाली को होता है वह हमारी चर्मचक्षुओं के देखने की क्षमता से परे है। फिर कैमरे और लैन्स की तो बात ही क्या? ये तो मानव निर्मित यन्त्र है।

गुरु-स्तवन

प्रेषक - श्वेता, भोपाल

हे गुरुदेव! आप मेरे जीवन के आराध्य, आप नित्य हो, समस्त लोकों के आश्रय हो, आपको नमस्कार करता हूँ। हे योगीराज! आप ज्ञान-स्वरूप ही विश्व की आत्मा स्वरूप हो, आप अद्वैत तत्व प्रदायक मुक्तिदायक हैं। आपको नमस्कार है। आप सर्वव्यापी निर्गुण ब्रह्म हो, सगुण रूप में आप हम समस्त शिष्यों के सामने उपस्थित हो, आपको नमस्कार है।

आप ही हम समस्त शिष्यों के एक मात्र 'शरण्य' अर्थात् आश्रय हो, आप इस संसार में हमारे लिए अद्वितीय वरणीय हो, आप ही समस्त सिद्धियों के एक मात्र कारण हो, आप विश्वरूप हो, आप के मुँह में और कण्ठ में सम्पूर्ण विश्व समाया हुआ है जिसे हमने कई बार अनुभव किया है। आप ही समस्त सिद्धियों के, संसार के श्रेष्ठी कर्ता, निर्माण कर्ता, पालन कर्ता और संहार कर्ता हो। आप निश्चल और विविध कल्पनाओं से रहित पूर्णता प्राप्त षोडश कलायुक्त पूर्ण पुरुष हो, आपको हम शिष्यों का नमस्कार है।

आप भय के भी भय हो, अर्थात् आपके नाम का स्मरण करते ही भय समाप्त हो जाता है, आप विपत्तियों के लिए विपत्ति स्वरूप हो, आपको देखते ही या आपका नाम स्मरण करते ही हम लोगों की विपत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं। हम सब शिष्यों की आप एक मात्र गति हो। आप पवित्रता के साक्षात् स्वरूप हो, उच्च पद पर जितनी भी महाशक्तियाँ हैं, आप उनके आधार स्वरूप हो, आप संसार के सभी श्रेष्ठ पदार्थों से प्रेरित हो और रक्षकों के पूर्ण रूप से रक्षक हो, हम सब शिष्य आपको भक्ति भाव से प्रणाम करते हैं।

हे तपस्वी! हे प्रभु! समस्त शिष्यों के हृदय में विराजमान अविनाशी रूप में रहते हुए, समस्त शिष्यों का कल्याण करने वाले और समस्त प्रकार की इन्द्रियों पर पूर्ण रूप से नियंत्रण करने वाले आप पूर्ण रूप से अगोचर होते हुए भी हम सब लोगों के सामने साक्षात् देह रूप में उपस्थित हो। हे सत्य स्वरूप, हे अचिन्त्य, हे अक्षर, हे व्यापक, हे न कहने वाले तत्व, हे ब्रह्म स्वरूप, हे मेरे आराध्य, हे मेरे प्राणों में निवास करने वाले, हम समस्त शिष्य आपके चरणों में हैं। आप हमें अपनी भक्ति, अपना ज्ञान और अपना स्नेह प्रदान करें, हम आपको भक्ति-भाव से प्रणाम करते हैं।

हम तो और किसी इष्ट को नहीं जानते, न तो हमें मंत्र ज्ञान है, और न तंत्र का न हमें पूजा विधि आती है और न साधना रहस्य, हम तो केवल गुरुमंत्र का जप करने में समर्थ हैं, पल-पल पर आप द्वारा बिखेरी हुई माया से हम कई बार भ्रमित हो जाते हैं और आपको सामान्य मानव समझने की गलती कर बैठते हैं, आपको सामान्य मानव की तरह हँसते और

उदास होते हुए देखते और विचरण करते हुए, कहते और सुनते हुए जब अनुभव करते हैं, तो हम सामान्य शिष्य भ्रम में पड़ जाते हैं, और हमारा सारा ज्ञान एक क्षण के लिए तिरोहित हो जाता है। हम बार-बार जन्म लेते हैं, संसार के दुःखों में, संसार की समस्याओं और गृहस्थ की परेशानियों में डूबते उतराते हुए आपका भली प्रकार से चिंतन नहीं कर पाते, हमें और कुछ भी नहीं आता, हम तो केवल आतुर कण्ठ से 'गुरुदेव' शब्द का उच्चारण ही कर सकते हैं और इसी शब्द के माध्यम से आपके द्वारा सिद्धाश्रम प्राप्त कर पूर्ण ब्रह्म में लीन हो जाना चाहते हैं, हम तो केवल इतना जानते हैं कि आप ही हमारे आश्रयभूत हो, आप ही हमारे जीवन के आधार हो, आप ही हमारे भवसागर के जहाज स्वरूप हो, हम तो केवल आपका ही आश्रय ग्रहण करते हैं और आपको हम सब श्रद्धायुक्त प्रणाम करते हैं।

संसार में ऐसा कोई नहीं, जिसमें कोई दोष न हो अथवा जिससे कभी गलती न होती हो। अतएव किसी की गलती देखकर जलो मत और न उसका बुरा चाहो। तुम अपनी गलतियाँ देखो और उन्हें सुधारने की सतत चेष्टा करो। दूसरों को देखना हो तो उन्हें उन्हीं के दृष्टिकोण से और उन्हीं की परिस्थिति में पहुँचकर देखो, फिर उनकी गलतियाँ उतनी नहीं दिखायी देंगी।

ऐसा कभी मत सोचो कि हम दूसरों को सुधारने के लिए ही जीवन धारण किये हुए हैं। पहले अपना सुधार करो। तुम्हारा सुधार हो गया तो जगत् का एक अंग अपने-आप ही सुधर गया। इस प्रकार यदि सब अपना-अपना सुधार करने लगें तो सारा जगत् अपने-आप ही सुधर जाय।

दूसरों को सीख देना मत सीखो, अपनी सीख मानकर उसके अनुसार बन जाना सीखो। जो सिखाते हैं, स्वयं नहीं सीखते-सीख के अनुसार नहीं चलते, वे अपने-आपको और जगत् को भी धोखा देते हैं।

हंस विद्या की महानता

पण्डित मनोहर लाल शर्मा, एम. ए. गुरुभक्त रत्न

(गुरुभक्त रत्न प्रिय पण्डित मनोहर लाल शर्मा ने बड़े प्रयास के साथ हंसोपनिषद् पर एक टीका लिखी है जिसका नाम 'हंसो पिनिषत्पका शिका' रखा है। टीका की लेखन शैली बहुत सुन्दर और स्पष्ट होने से मेरे मन में यह विचार हुआ कि इस पुस्तिका के विभिन्न विषयों को मासिक पत्र 'सिद्धयोग' में प्रकाशित करा दिया जाय जिससे जिज्ञासु समुदाय पूरा-पूरा लाभ उठा सके। हंस विद्या के अध्ययन से मनुष्य का आत्मोत्थान उत्कृष्टता साथ-साथ बढ़ते हैं और इसके अनचर आचरण करने से मनुष्य जल्दी ही सिद्धि लाभ कर लेते हैं। हंस विद्या के थोड़े-थोड़े संकेत हमारे पुराने ग्रंथों में बहुत स्थान पर पाये जाते हैं, जो हंस विद्या की उत्कृष्टता को समझाने वाले हैं। अतः हर जिज्ञासु को यह लेख पढ़ करके लाभ उठाना चाहिए और परम श्रेय की ओर बढ़ना चाहिए जिससे मनुष्य जीवन का धारण करना सफल हो। जो इस प्रकार के लेखों को पढ़ करके अपने परम श्रेय के लिए प्रयत्न करेंगे वह परम कृपामय प्रभु उनके सब प्रकार से सहायक होंगे। — संपादक)

हंस साधना अनादिकाल से प्रचलित है। सदाशिव, ब्रह्मा, विष्णु, वशिष्ठ, गोरक्षादि इसके महान् आचार्य हैं। महात्मा बुद्ध ने भी इसका उपदेश अपने अन्तरंग शिष्यों को दिया था। शास्त्रों में इस साधना को भिन्न-भिन्न नामों से कहा गया है। यथा-'आत्म शास्त्र', 'हंस विद्या', 'हंस योगी', 'प्राण विद्या', 'प्राण यज्ञ', 'अजपा गायत्री', 'महा विद्या', 'महायोग'। बौद्ध शास्त्रों में 'आना पानसति' नाम से इस विद्या की प्रसिद्धि है। प्राणापान श्रुति का अपभ्रंश ही 'आनापानसति' है। इसका अर्थ है प्राण तथा अपान की ध्वनि श्रवण की विद्या।

हंस तत्व को आत्म ग्रन्थ कहते हैं, क्योंकि हंस मन्त्र को उलटने से 'सोऽहं' मंत्र बन जाता है। सोऽहं महावाक्य है, यानी-वह परमात्मा मैं है, इस मंत्र के अभ्यास विचार से आत्मानुभूति होती है, अतः इसे आत्म मन्त्र कहते हैं।

हंस मंत्र का नाम अजपा जप अथवा अजपा गायत्री भी है। श्वास बाहर निकलते समय हं ध्वनि करता है और भीतर प्रवेश करते समय सः की ध्वनि करता है, इसलिए प्राण का नाम हंस है। हंसः जप प्राणी की अपनी चेष्टा के बिना ही स्वतः होता रहता है इसलिए इसे अजपा जप कहते हैं। प्राणों की रक्षा करने से इसे अजपा गायत्री भी कहते हैं।

बिना जपेन देवेशि जपो भवति मन्त्रिणः।

अजपेयं ततः प्रोक्ता भवपाश निकृन्तनी।।

(पार्वती महेश्वर सम्वाद)

हे देवताओं की स्वामिनी पार्वति! बिना जाप किये ही इस मंत्र का जप होता है, इसलिए इसे अजपा गायत्री कहा गया है। यह गायत्री भव–बन्ध काटने वाली है।

हंस हंस वदेद्वाक्यं प्राणिनां देहमाश्रित:।

स प्राणापान योर्ग्रंथि रजपेत्यभिधीयते।। ।।

(78 / ब्रह्मविद्योपनिषद्)

सब देहधारियों का आश्रय लेकर प्राण हं हंस: वाक्य बोलता है। इस प्राण और अपान की ग्रंथि (हं+स:) को अजपा गायत्री कहते हैं।

हंस: मंत्र का नाम प्राण विद्या भी है। मनन प्रधान होने से मंत्र और क्रिया प्रधान होने स विद्या कही जाती है। हंस: मंत्र का जप प्राण तथा अपान का ही खेल है। हंस: मंत्र की साधना प्राण को लक्षित करके की जाती है, इसलिए इसे प्राण विद्या कहते हैं। हंस मंत्र स्वभाव की साधना है अत: सरल है। इसमें गंध, पुष्प, धूप दीप, नैवेद्यादि उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती। साधना पूर्ण होने पर आत्मदर्शन होता है, जो कि परम् पुरुषार्थ है, अत: इसको महाविद्या, ब्रह्मविद्या भी कहते हैं।

अनया सदृशी विद्या न भूता न भविष्यति।

हंस मंत्र के सदृश अन्य कोई भी विद्या न हुई है और न होगी।

कुण्डलिन्या समुद्भूता गायत्री प्राण धारिणी।

प्राण विद्या महा विद्या यस्तां वेत्ति सवेदवित्।।

(35 / योग चूडामण्युपनिषद्)

भगवती कुण्डलिनी शक्ति से उत्पन्न अजपा गायत्री प्राण धारण करने वाली है। यही प्राण विद्या और महाविद्या है। जो इसको जानता है वह वेदवेत्ता है।

हंस मंत्र का महायोग भी नाम है। मंत्र योग, हठयोग, लययोग तथा राजयोग– ये चारों हंस महायोग की अन्तर्भूमिकायें हैं।

मंत्रो हठो लयो–राजयोगोऽन्तर्भूमिका: क्रमात्।

एक एव चतुर्धाऽयं महायोगोऽभिधीयते।।

(129 / योगशिखोपनिषद्)

मंत्र योग, हठयोग, लययोग तथा राज योग चारों हंसयोग की भीतर की भूमिकाएँ हैं। एक ही हंसयोग महायोग कहा जाता है।

हंस मंत्र का नाम हंस योग भी है। 'हं' शिव को कहते हैं और स: शक्ति को। शिव–शक्ति के योग यानि एकत्व अनुभूति से समाधि सिद्ध होती है और जीवात्मा का परमात्मा से तादात्म्य हो जाता है। इसलिए इस मंत्र को हंस योग भी कहते हैं।

श्रीधर स्वामी ने हंस मंत्र का प्राण यज्ञ नाम दिया है। गीता के चतुर्थ अध्याय के श्लोक

'अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे।' की टीका करते हुए कहा है कि प्राण में अपान की आहुति तथा अपान में प्राण की आहुति हंसः मंत्र की अनुलोम प्रतिलोम क्रियामात्र है। यानि जीव द्वारा 'सोऽहं, हंसः, सोऽहं' अजपा जप प्राण यज्ञ है। हमने हंस मंत्र के विभिन्न नाम इसलिए बताये हैं कि पाठकों को ज्ञात हो जाये कि इस मंत्र ने कितनी ख्याति प्राप्त की है और इसकी कितनी बड़ी महिमा और साधना में उपयोगिता है।

हंस विद्या के विभिन्न नाम बताकर अब इसकी महिमा बतानी है। शास्त्रों ने मुक्त कण्ठ से इसकी महिमा का भूरि–भूरि बखान किया है। इनके नाना नाम भी इसकी अतुल्य महिमा पर प्रकाश डालते हैं। पार्वती–परमेश्वर संवाद से उद्धृत करते हैं।

ईश्वर उवाच।–

अजपाराधनं देवि कथयामि तवाऽनघे।
यस्य विज्ञानमात्रेण परं ब्रह्माधिगच्छति।।
हंसं परं परेशानि प्रत्यहं जपते नरः।
मोहान्धो यो न जानाति मोक्षस्तस्य न विद्यते।।
प्रत्यहं जपते प्राणः स्वादानन्दमयी परा।
उत्पत्तिर्जपारम्भो मृतिरस्या निवेदनम्।।
बिना जपेन देवेशि जपो भवति मन्त्रिणः।
अजपेयं ततः प्रोक्ताः भवपाश निकृन्तनी।।
अजपा नाम गायत्री त्रिषु लोकेषु दुर्लभा।
अनया जपतो नित्यं पुनर्जन्म न विद्यते।।
अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी।
अस्याः संकल्प मात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते।।
अनया सादृशी विद्या अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं पुण्यं न भूतं न भविष्यति।।

अब इसका अर्थ करते हैं। महेश्वर बोले हे निष्पाप पार्वति! अब मैं तुम्हें अजपा गायत्री (हंस मंत्र) की आराधना बताऊँगा। इस आराधना (हंस विद्या की प्रक्रिया) का गुरुमुख से विशेष ज्ञान करने मात्र से परब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। हे परमेश्वरि! प्रत्येक प्राणी महान हंसः मंत्र का निरन्तर (दिन रात) जप करता रहता है। जिस बज्र मूढ़ को इसका ज्ञान नहीं है, उसका मोक्ष नहीं हो सकता। दिन रात प्राण परम् आनन्दमयी अजपा गायत्री का जप करता रहता है। प्राणी के जन्मते ही इस मंत्र का जप प्राण आरम्भ कर देता है और मृत्यु के समय इसका समर्पण कर देता है। श्वांस निकलते समय 'हं' ध्वनि करता है, और प्रवेश करते समय 'सः' ध्वनि करता है, अतः वह हंसः मंत्र का जप करता है। हे देवताओं की स्वामिनि! प्राणी की

बिना चेष्टा के ही सदा यह प्राण हंस मन्त्र का स्वतः जाप करता है, अतः इसे अजपा गायत्री कहते हैं। इस अजपा जप का ज्ञान भव–बन्धनों का नाश करने वाला है। अजपा गायत्री का विधान तीन लोक में दुर्लभ है। इसके नित्य जपने से पुनर्जन्म नहीं होता। अजपा नाम की गायत्री हंस योगियों को मोक्ष देने वाली है। इसके संकल्प मात्र से मनुष्य पापों से छूट जाता है। अजपा गायत्री के सदृश अन्य कोई विद्या नहीं है, न इसके समान कोई जप है। इसके जप के समान कोई अन्य पुण्य न हुआ है और न होगा। ब्रह्म विद्योपनिषद में लिखा है–

प्राणिनां देह मध्ये तु स्थितो हंसः सदाऽच्युतः।
हंस एव परं सत्यं हंस एव शक्तिकम्॥60॥
हंस एव परं वाक्यं हंस एव तु वादिकम्।
हंस एव परो रुद्रो हंस एव परात्परम्॥61॥
सर्व देवस्य मध्यस्थो हंस एव महेश्वरः।
पृथिव्यादि शिवान्तं तु अकाराद्याश्च वर्णिका॥62॥
कूटान्ता हंस एव स्यान्मातृकेति व्यवस्थितः।
मातृकारहितं मन्त्रमा– दिशयन्ते न कुत्रचित्॥63॥

इसका अर्थ है– प्राणधारियों की देह के बीच में निवास करता हुआ हंस ही सदा अच्युत (अपने स्वरूप में स्थिर) रहता है, विष्णु है। हंस ही परम सत्य (सत्ता) है, हंस ही शक्तिमान् है, हंस ही महावाक्य है, हंस ही तो महावाक्य का वक्ता है, हंस ही महान रुद्र है, हंस ही माया से भी सूक्ष्म है। सर्व देवताओं के शरीर में हंस ही विराजता है। हंस ही महान ईश्वर है। पृथ्वी जल आदि से लेकर शिव पर्यन्त छत्तीस तत्त्व तथा अकारादि से लेकर क्ष तक तथा कूट पर स्थित वर्ण हंस ही है। इन सब वर्णों में मातृका रूप से हंस ही व्यवस्थित है अर्थात् ये सब मातृका हंस का ही प्रसार है। कहीं भी मातृका रहित मन्त्र का उपदेश नहीं किया जा सकता, अतः सब मन्त्र हंस ही है।

योग चूडामणि उपनिषद् में लिखा है–

कुण्डलिन्या समुद्भूता गायत्री प्राण धारिणी।
प्राण विद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स वेदवित्॥35॥

यह प्राण धारण करने वाली हंस गायत्री कुण्डलिनी शक्ति से उत्पन्न हुई है। इसे प्राण विद्या और महाविद्या कहते हैं। जो इस अजपा गायत्री के रहस्य और प्रक्रिया को जानता है वह वेद का ज्ञाता है। जैसे पार्वती महेश्वर सम्वाद में इसकी महिमा कही है। वैसे ही आगे चलकर इसी उपनिषद् में भी कही है, प्रायः उन्हीं शब्दों में, अतः उसे उद्धृत नहीं किया गया है।

श्री प्रभु चरणों में समर्पित

राजेश कुमार सिंह, बलिया

यहाँ तो मर्यादा हो रही, तार-तार हरदम,
सम्भलकर रहना, कहीं तू बहक न जाये।
ये योगेश्वर की जगह है, जहाँ तुम रहते हो,
देखना उनकी नजर में तू खटक न जाये।
उम्मीद है कुछ लोग, तुझे उकसायेंगे बहुत,
होश में रहना कहीं, तुम्हें क्रोध गटक न जाये।
बहुत कम होंगे, तुमको, यहाँ साथ देने वाले,
पर उस परमेश्वर से, विश्वास चटक न जाये।
योगाग्नि को जलाते रहना, जहाँ भी चलो,
काम-वासना मन को, कहीं पटक न जाये।
इन नागों के जहर से, कुछ न बिगड़ेगा
बचना तेरे गले से, ये लटक न जाये।
धारा तेरे प्रतिकूल, सन्मार्ग में हैं शूल,
उलझनों में कदम, कहीं अटक न जाये।
अंधियारा दूर करना है, चिराग बन 'राजेश'
गुरुवर को ध्यान छोड़ तू, कहीं और भटक न जाये।

योग ही से कैवल्य-लाभ

श्री सुरेन्द्र बहादुर, एम.ए.

''योग ही से कैवल्य लाभ'' का तात्पर्य यह नहीं कि योग के अतिरिक्त कोई अन्य साधन है ही नहीं या अन्य साधन व्यर्थ है। मोक्ष के जितने भी साधन हमारे शास्त्रों में वर्णित हैं सभी ठीक हैं और सभी यथार्थ हैं। परंतु इसमें कोई सन्देह नहीं कि योग सर्वशास्त्र–प्रशंसित, सर्व समर्थित सार्वभौम धर्म है। योग में सारे साधनों का समावेश है। योग–विद्या वह विद्या है जिसके जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है। ''यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातं भवति।'' भक्ति, ज्ञान आदि साधन योग से भिन्न नहीं है, प्रत्युत योग के ही विभिन्न सोपानों के नाम हैं। योग के आठ अंग हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। सांख्य–योग इनमें से प्रथम पाँच अंगों को उनके मूल रूप में स्वीकार करता है। सांख्ययोग की साधना में यम से लेकर प्रत्याहार तक की क्रिया समाप्त करने के पश्चात् चित्त की वृत्तियों का निरोध किया जाता है और जब चित्त की सभी वृत्तियों का निरोध हो जाता है तो निरोध करने वाली वृत्ति भी सर्वथा निरुद्ध हो जाती है। सांख्य और योग की साधनाओं में अन्तर केवल इतना ही है कि प्रत्याहार के पश्चात् योगी क्रमशः धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास करके चित्त की वृत्तियों का निरोध करता है और सांख्ययोगी, इन साधनों का अभ्यास न करके, सीधे चित्त की वृत्तियों को ही रोकने का अभ्यास प्रारंभ कर देता है। परिणाम दोनों का एक ही होता है और वह परिणाम है चित्त की वृत्तियों का निरोध होकर स्वरूप में स्थिति। दोनों प्रकार की साधनाओं में प्रत्याहार के पश्चात् जो अन्तर दिखलाई देता है वह केवल ऊपरी और नाम मात्र का अन्तर है। सांख्ययोग की साधना में चित्त को वृत्तिशून्य करने के लिए एक निरोधक वृत्ति का आश्रय तो लेना ही पड़ता है। इस प्रकार केवल एक वृत्ति की डोर पकड़े रहना धारणा नहीं तो और फिर क्या है? देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। अर्थात्, अन्य विषयों से चित्त को हटा कर एक ध्येय पर वृत्तिमात्र से ठहराना धारणा है। इसका सूक्ष्म अर्थ यह हुआ कि केवल ध्येयाकार वृत्ति का आसरा लेकर अन्य सारी वृत्तियों का निरोध करे। इस प्रकार यह ध्येयाकार वृत्ति निरोधक वृत्ति हुई। असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में यह निरोधक वृत्ति भी पर वैराग्य के द्वारा निरुद्ध हो जाती है और चितिशक्ति अपने स्वरूप में स्थित हो जाती है। यही कैवल्य है जिसे हम ऊपर लिख चुके हैं। अब तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो चुकी कि सांख्य और योग की साधनाओं में स्वरूपतः कोई अन्तर नहीं है। अब प्रश्न उठता है कि यदि सांख्य और योग में कोई अन्तर नहीं है तो भगवान् श्रीकृष्ण ने दोनों को दो निष्ठायें बतलाकर अन्तर को पुष्ट क्यों किया?

यथा:-

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघा।
ज्ञान योगेन सांख्यानां कर्म योगेन योगिनाम्।।

गीता 4/3/3

"हे निष्पाप अर्जुन! इस लोक में मैंने दो प्रकार की निष्ठायें बतलाई हैं। सांख्य योग की निष्ठा ज्ञानयोग से और योगियों की निष्ठा कर्मयोग से होती है।" इस प्रश्न का उत्तर यह है कि एक सांख्य योगी को चित्त की वृत्तियों का निरोध करने के लिए कर्मों से दूर रहना ही श्रेयस्कर है अन्यथा अन्य वृत्तियों का निरोध करने के लिए कर्मों से दूर रहना ही श्रेयस्कर है अन्यथा अन्य वृत्तियां उदित होती रहेंगी और साधक की वृत्ति-निरोध साधना कभी पूरी नहीं होगी। परन्तु योगी अपने साधना-काल में ही ईश्वर के सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का पूर्णतया साक्षात्कार कर लेता है और ऐसा करने के कारण उसकी सारी भोग-वासनायें स्वतः मिट जाती हैं। अतः वासनाओं के अभाव में उसके कर्म फलों की आसक्ति से शून्य होते हैं। जो कर्म, फलों की आसक्ति से शून्य होते हैं वे बन्धनकारक नहीं होते। योग-दर्शन के विभूतिपाद के 26वें सूत्र का भाष्य करते हुए भगवान् व्यासदेव ने लिखा है कि योगी को चाहिए कि आत्मसाक्षात्कार से पहले अतल, वितल, तलातल, रसातल, पाताल व महातल आदि नीचे के लोकों का तथा भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य आदि ऊपर के लोकों का पूर्ण प्रत्यक्ष कर ले जिससे उसके मन में ऐश्वर्यों को भोगने की कोई कामना शेष न रह जाय। इसीलिए सांख्ययोगी की निष्ठा ज्ञानयोग से और योगी की निष्ठा कर्मयोग से कही गई है।

अब प्रश्न उठता है- इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है? इस प्रश्न का सीधा उत्तर है कि योग सांख्य से श्रेष्ठतर है। इस उत्तर के चार कारण हैं। पहला तो यह कि योगी ज्ञान और विज्ञान दोनों से तृप्त रहता है। दूसरा यह कि योग के समान कोई बल नहीं है। तीसरा यह कि ज्ञानमार्ग की अपेक्षा योगमार्ग अधिक सरल और सुनिश्चित मार्ग है। चौथा यह कि योग के बिना ज्ञान सम्भव ही नहीं है।

अब हम पहले कारण पर विचार करेंगे। भगवान् श्रीकृष्ण ने युक्त योगी का लक्षण बतलाते हुए कहा:-

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्म कांचनः।।

गीता 6/8

योगी ज्ञान और विज्ञान दोनों से तृप्त रहता है। ज्ञान और विज्ञान में अन्तर यह है कि ज्ञान का सम्बन्ध केवल बुद्धि से रहता है और विज्ञान कहते हैं अनुभव युक्त ज्ञान को। अनुभवहीन ज्ञान कोरा ज्ञान कहलाता है किंतु यदि उसी ज्ञान का अपने अन्तःकरण में अनुभव

कर लिया जाय तो उसकी संज्ञा विज्ञान हो जाती है। योगी आत्म सम्बन्धी ज्ञान तो कर ही लेता है साथ–ही–साथ वह ईश्वर के सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का भी पूर्ण साक्षात्कार करके विज्ञान–तृप्त और आप्त काम हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।

सो विकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः।।

गीता 10/7

जो मेरी इस विभूति अर्थात् विस्तार को और योग को तत्व से जानता है। (यथार्थतः जानता है) वह निश्चय योग से युक्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है।

श्री मद्भगवद्गीता के दसवें अध्याय में जब भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी विभूतियोग का विस्तार पूर्वक वर्णन किया तो उससे अर्जुन को संतोष न हुआ क्योंकि उससे जो ज्ञान अर्जुन को हुआ वह कोरा ज्ञान था। अतः यह स्वाभाविक ही था कि अर्जुन के मन में उस विभूति को प्रत्यक्ष देखने की इच्छा हुई और उन्हों ने भगवान से उसे दिखाने की प्रार्थना की। साक्षात् भगवान ही जिसके उपदेशक हों उसे ज्ञान प्राप्त न हो यह असम्भव है। अतः अर्जुन ज्ञान–तृप्त तो हो गये किंतु विज्ञान–तृप्त न होने के कारण उन्होंने भगवान के ऐश्वर्य को देखने की जिज्ञासा की:–

एवमेतद्यथात्थत्वमा–त्मानं परमेश्वर।

द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम।।

गीता 11/3

अर्थात्– हे परमेश्वर! आप अपने को जिस प्रकार बतलाते हैं, आप ठीक वैसे ही हैं तथापि हे पुरुषोत्तम! आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज से युक्त ऐश्वर्यमय रूप को मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूं। भगवान ने अर्जुन की इस प्रार्थना को स्वीकार करके उन्हें अपना परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्य स्वरूप दिखलाया और उसे देखकर अर्जुन विज्ञान तृप्त हुए तथा उन्होंने भगवान की प्रार्थना सच्चे हृदय से की।

यहाँ पर यह बतला देना अप्रासंगिक न होगा कि ईश्वर में सच्चा आत्म निवेदन योगी ही हो सकता है और इसी का नाम ईश्वर प्रणिधान है। जिस समय योगी भगवान् का ध्यान करते–करते भगवान के मन में अपना मन, उनके चित्त में अपना चित्त, उनकी बुद्धि में अपनी बुद्धि और उनके अहंकार में अपना अहंकार लीन कर देता है उस समय वह पराभक्ति को प्राप्त हो जाता है और संसार के सभी नाम रूपों में भगवान् के ही नाम–रूप को देखने लग जाता है। वह गोस्वामी तुलसीदास के इस भाव का साक्षात् अनुभव कर लेता है:–

सियाराम मय सब जग जानी। करउं प्रनाम जोरि जुग पानी।

अथवा

निज प्रभुमय देखहिं जगत, कासन करहिं विरोध।

इसके अतिरिक्त भगवान् की सच्ची प्रार्थना भी योगी ही करता है। भगवान् के विश्वरूप का दर्शन करने के पश्चात् अर्जुन ने जिस प्रकार की प्रार्थना की उस प्रकार की प्रार्थना अर्जुन ने पहले नहीं की थी। ठीक इसी प्रकार जब योगी ईश्वर के विश्वरूप ऐश्वर्य का अवलोकन कर लेता है तो उसके भी हृदय से ईश्वर की सच्ची प्रार्थना उमड़ पड़ती है और वह भी अर्जुन के स्वर में मिला कर कहने लगता है–

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं, हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं, मया प्रमादात्प्रणयेन वापि।।
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि, विहार शय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं, तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्।।
पितासि लोकस्य चराचरस्य, त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो, लोकत्रयेऽप्य प्रतिमप्रभाव।
तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं, प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः, प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।।

गीता 11/41–44

प्रभो! तुम्हारी इस महिमा को न जानकर तुझे अपना सखा समझकर मैंने हठ–पूर्वक तुम्हें हे कृष्ण! हे यादव, हे सखे, आदि कहा मैंने हँसी के लिए, विहार शय्या, आसन और भोजन आदि में अकेले या सखाओं के सामने जो आपको अज्ञानवश अपमानित किया है उसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। आप इस चराचर जगत के पिता महान् गुरु एवं अति पूजनीय हैं, हे अतिशय प्रभाव वाले! तीनों लोकों में आपके समान दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक कैसे होवे? इससे हे प्रभो, मैं शरीर को अच्छी प्रकार चरणों में रख करके और प्रणाम करके, स्तुति करने योग्य आप ईश्वर को प्रसन्न होने के लिए प्रार्थना करता हूँ। हे देव! जिस प्रकार पिता पुत्र के, सखा सखा के और पति प्रिय स्त्री के अपराधों को क्षमा करता है उसी प्रकार आप मेरे अपराधों को क्षमा कर सकते हैं।

कुछ लोगों की यह धारणा रहा करती है कि:–

राम नाम जपते रहो धरे रहो मन धीर।
कारज सकल सँवारि हैं कृपासिंधु रघुवीर।।

ऐसे लोग यह सोचते हैं कि धारणा, ध्यान आदि कौन करने जाय, भगवान का नाम रटते रहो, यदि मृत्यु के समय भगवन्नाम का उच्चारण हो गया तो फिर मोक्ष तो मिल ही जायेगा। मेरे विचार से ऐसे लोग भ्रम में हैं। यदि मोक्ष इतना ही सरल होता तो हमारे ऋषियों को इतने उपनिषद् और पुराणादि लिखने की आवश्यकता ही क्या थी? मेरे कहने का यह

तात्पर्य नहीं कि भगवान के नाम का जप व्यर्थ है और उससे मनुष्य का आध्यात्मिक विकास होता ही नहीं। बल्कि मैं इस बात को मानता हूँ कि यदि नाम का जप मनोयोगपूर्वक हो, अर्थात् भगवान् के स्वरूप के ध्यान के साथ–साथ हो तो वह नाम–जप आत्म–कल्याण का कारण बन जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है:–

साधक नाम जपहिं लय लायें।

होहिं सिद्ध अनिमादिक पायें।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने ठीक ही लिखा कि साधक नाम–जप के द्वारा अणिमादिक सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है किंतु इसमें 'लयलायें' शब्द ध्यान देने योग्य है। इसका अर्थ यह है कि मन को सांसारिक विषयों से हटाकर चित्त को परमात्मा में लगाकर जप करना चाहिए, यह क्रिया–योग से भिन्न नहीं है। योगदर्शन में 'भगवान् पतंजलि' ने लिखा है:– **तज्जपस्तदर्थभावनम्** अर्थात् भगवान के नाम का जप तथा उस नाम के अर्थ–मूल ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। भगवान् व्यासदेव ने लिखा है:–

स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत्।

स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते।।

परमात्मा अथवा भगवान् के ध्यान के साथ–साथ उनके नाम का जप करना योग शास्त्र का ईश्वर प्रणिधान है। यह ईश्वर प्रणिधान असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त कराने वाला एक उपाय है। इसीलिए भगवान पतंजलि ने लिखा है:– **ईश्वरप्रणिधानाद्वा।** (योग–सूत्र 1/23)

जिस नाम जप में मन का योग नहीं रहता वह विशेष लाभकारी नहीं होता। फिर आप कहेंगे कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है कि–भाव अथवा कुभाव से भगवन्नाम का उच्चारण करने से सब प्रकार से मंगल ही होता है। यथा–

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।

नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

मैं भी इस बात को मानता हूँ कि यदि नाम–जप मनो योग पूर्वक नहीं किया गया तो भी उसका एक फल तो अवश्य मिलता ही है और वह फल है पुण्य–लाभ। किंतु सभी पुण्यो का एकमात्र फल है किसी सिद्ध महापुरुष की संगति और उनकी कृपा से योगी होना। यदि मृत्यु के समय भगवन्नाम के उच्चारण से ही मोक्ष हो जाने का नियम होता तो अजामिल को भी तत्काल मोक्ष मिल जाना चाहिए था, क्योंकि उसने भी मृत्यु के समय भगवन्नाम का उच्चारण किया था, परंतु उसकी तत्काल मुक्ति नहीं हुई। हाँ, उस नाम उच्चारण का इतना फल अवश्य हुआ कि उसे विष्णु–दूतों की संगति प्राप्त हुई और इस सत्संगति के फलस्वरूप वह योगी बना और हरद्वार में बारह वर्षों तक योग की साधना करके उसने कैवल्य मोक्ष को प्राप्त किया। श्री मद्भागवत् में श्री शुकदेवजी परीक्षित से कहते हैं:–

इति जातसुनिर्वेद :खणसंगेन साधुभु।
गंगाद्वारमुपेयाय मुक्त सर्वानुबन्धन:।।
स तस्मिन् देवसदन आसीनो योगमाश्रित:।
प्रत्याहृतेन्द्रियग्रानो युयोज मन आत्मनि।।
तत्रो गुणेभ्य आत्मानं वियुज्यात्म समाधिना।
युयुजो भगवद्धारिन ब्रह्मण्यनुभवात्मनि।।

–श्रीमद्भगवत

"उन भगवान् के पार्षद साधुओं का केवल थोड़ी देर के लिए सत्संग हुआ था। इतने से अजामिल के चित्त में संसार के प्रति तीव्र वैराग्य हो गया। वे सबके सम्बन्ध और मोह को छोड़ कर हरद्वार चले गये। उस देव स्थान में जाकर वे भगवान् के मन्दिर में आसन से बैठ गये और उन्होंने योग–मार्ग का आश्रय लेकर अपनी सारी इन्द्रियों को विषयों से हटा कर मन में लीन कर लिया और मन को बुद्धि में मिला लिया तथा बुद्धि को भगवान् के धाम अनुभव स्वरूप परब्रह्म में जोड़ दिया।"

जब तक मनुष्य योग का आश्रय लेकर जीवात्मा–परमात्मा की एकता रस समाधि को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक वह चाहे कितना ही जप, यज्ञ, भक्ति, तीर्थ, दान आदि करे, कैवल्य की प्राप्ति से वंचित ही रहता है। अजामिल ने भगवन्नाम का जप किया किंतु इस जप से उसको मोक्ष नहीं मिला जिसका उदाहरण हम ऊपर दे चुके हैं। कर्म–काण्ड आदि उपासनायें स्वर्ग दे सकती है पर मोक्ष नहीं। स्वर्ग का सुख अल्पकालीन और परिणाम में दु:खदायी होता है। 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति।' 'स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदायी।' भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में लिखा है:–

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।

अर्थात् – योग का जिज्ञासु भी शब्द–ब्रह्म अथवा कर्म–काण्ड से ऊपर हो जाता है। योग का अर्थ है समाधि। समाधि उस समतावस्था को कहते हैं जिसमें जीवात्मा और परमात्मा की एकता स्थापित हो जाती है। '**समाधि समतावस्था जीवात्म परमात्मन:।**' जब तक समाधि रूप योग की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक कैवल्य अछूता ही रह जाता है। दशरथ के समान भगवान् का प्रेमी भक्त कौन होगा जिन्होंने भगवान् के ही विरह में, उन्हीं का स्मरण करते हुए तथा उन्हीं के नाम का उच्चारण करते हुए प्राण त्याग कर दिया। परंतु परिणाम क्या निकला? परिणाम भगवान् शंकर के शब्दों में सुन लीजिए:–

दशरथ भेद भगति उर लावा।
ताते उमा मोच्छ नहिं पावा।।

अर्थात– हे पार्वति! दशरथ को भेद–भक्ति के कारण मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई।

योग के समान कोई बल नहीं है। भगवान् श्री शिवजी ने स्वयं अपने मुख से कहा है 'नास्ति योगात्परं बलम्।' अर्थात्– योग के समान कोई बल नहीं है। योग के ही बल से भगवान् विष्णु जगत का पालन–पोषण करते हैं, ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते हैं और शंकर संहार करते हैं। योग दर्शन के अन्दर एक सूत्र आता है:–

तप: स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोग:।

अर्थात्– तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान क्रियायोग है। इनमें से केवल तप के बल का वर्णन करते हुए श्री गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं –

तप बल रचइ प्रपंचु बिधाता।
तप बल बिष्नु सकल जग त्राता।।
तप बल संभु करहिं संघारा।
तप बल सेषु धरहिं महिभारा।।

योग के आठ अंगों में से किसी एक अंग का पालन करने वाला भी योगी कहलाता है। जिसने केवल यम का पालन कर लिया उसकी वाणी सत्य होती है, उसके निकट आने वाले हिंसक जीव भी वैर–भाव का त्याग कर देते हैं, वह दूसरे जिज्ञासुओं को ज्ञान प्रदान करने में समर्थ हो जाता है और उसे संसार के सारे रत्न उसको हस्तामलकवत दिखाई देने लग जाते हैं तथा उसे अपने पिछले जन्मों का भी ज्ञान हो जाता है। प्राणायाम के बल से योगी काल को भी जीत लेता है।

ब्रह्मादयोऽपि त्रिदशा: पवनाभ्यासतत्परा:।
अभवन्नान्तको भयस्त–स्मात् पवनमभ्यसेत्।।

अर्थात्– ब्रह्मादिक जितने भी देवता हैं वे सब प्राणायाम परायण हैं। प्राणायाम के बल से मनुष्य काल को भी जीत लेता है। इसलिए मनुष्य को प्राणायाम का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। प्राणायाम का महत्त्व बतलाते हुए श्रुति कहती है –

प्राणायामशतं स्नात्वा य: करोति दिने दिने।
माता पितृगुरुघ्नोपि त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति।।

अर्थात्– "जो पुरुष प्रतिदिन स्नान करके सौ प्राणायाम करता है वह यदि माता, पिता या गुरु की हत्या करने वाला हो तो भी तीन वर्षों में उस पाप से मुक्त हो जाता है।" प्राणायाम की शक्ति अनन्त है उसे इस छोटे से लेख में गिनाना सम्भव नहीं है।

योगी की शक्ति ईश्वर की शक्ति के बराबर होती है। वह सृष्टि–रचना तक कर सकता है। विश्वामित्र ने योग के ही बल से नयी सृष्टि–रचना की थी। दूरदर्शन, दूर–श्रवण, आकाशगमन, परकाय–प्रवेश, लोकान्तरगमन, काल–यात्रा, मृत्यु–जय, सर्वज्ञता, मनोजीवता आदि शक्तियाँ योगी में ही हुआ करती हैं, अन्य में नहीं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, योग–मार्ग ज्ञान–मार्ग की अपेक्षा अधिक सरल तथा सुनिश्चित मार्ग है। सुनिश्चित इसलिए है कि योगी को अभ्यास काल में अपनी प्रगति का ज्ञान हो जाया करता है। अतः वह अधिक उत्साह के साथ अपने अभ्यास को बढ़ाता रहता है और इस प्रकार क्रमशः बढ़ते–बढ़ते वह अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। परंतु ज्ञानी के लिए अपनी प्रगति का अन्दाज लगा लेना बड़ा कठिन होता है। इसीलिए ज्ञान–मार्ग के कुछ पथिक हताश होकर अपना अभ्यास बीच में ही बन्द कर देते हैं। योगी को योगाभ्यास करते–करते जब दिव्य अनुभूतियाँ प्रारम्भ हो जाती हैं तब उस अभ्यास में उसकी श्रद्धा बढ़ जाती है और उसका उत्साह दिनों दिन तेजी से बढ़ने लगता है। फिर तो वह और भी अधिक तत्परता के साथ अपना अभ्यास करने लग जाता है। यही कारण है कि योग–मार्ग ज्ञान–मार्ग की अपेक्षा अधिक सरल और सरस हो जाता है। यदि योग के जिज्ञासु को प्रारम्भ में ही किसी सिद्ध योगिराज का आश्रय प्राप्त हो गया तब तो फिर उस जिज्ञासु को अधिक अभ्यास की भी आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि उन महापुरुष का शक्तिपात उस साधक को योगाभ्यास के प्रथम दिन से ही दिव्यानुभूतियां प्रारम्भ करा देता है, जिसके परिणाम स्वरूप उस साधक की श्रद्धा और उसका उत्साह उसी दिन से बढ़ने लगता है और वह बहुत ही अल्पकाल में अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है। यही सिद्ध योग का मार्ग है।

ज्ञान मार्ग बड़ा ही रूखा तथा दुरूह है। इसको कठिनता का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं :–

ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेश होइ नहिं बारा।।

श्रुति कहते हैं:–

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।

(कठोपनिषद् 1/3/14)

अर्थात् –जिस प्रकार छुरे की धार तीक्ष्ण होती है, तत्वज्ञानी लोग उस ज्ञानमार्ग को वैसा ही दुर्गम बतलाते हैं।

आजकल यह आम धारणा भी हो गयी है कि भक्ति मार्ग से सरल कोई मार्ग नहीं है। परंतु यदि विचार करके देखा जाय तो ये दोनों साधन अलग नहीं हैं प्रत्युत भक्ति मार्ग योग के ही अन्दर है योग के बाहर नहीं। दोनों में जो अन्तर दिखाई देता है वह प्रारम्भिक है। भक्ति का प्रारम्भ बाह्य उपासना से होता है और योग का प्रारम्भ आन्तरिक उपासना से होता है। बाह्य उपासना करते–करते जब भक्त में बाह्य एकाग्रता आ जाती है तो उसमें अन्तर्मुखता की योग्यता के साथ–साथ अन्तर्मन की एकाग्रता रूप धर्म का भी उदय होने लगता है। यहीं से योग का प्रारम्भ होता है। गुजरना तो सबको पड़ेगा योग में से ही होकर। किंतु यह एक लम्बी प्रक्रिया है। हाँ, इतना अवश्य है कि कम मानसिक योग्यता वालों के लिए, जिनका मन बहुत अधिक चंचल है, उनके लिए बाह्य एकाग्रता सरल है। किंतु कितना ही चंचल चित्त वाला

मनुष्य क्यों न हो सिद्धयोग के समान सरल मार्ग उसके लिए कोई भी नहीं हो सकता।

जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है सभी मार्ग वालों को गुजरना पड़ता है योग के ही अन्दर से होकर। इसीलिए भगवान् शंकर ने पार्वतीजी से कहा:–

योगात्संप्राप्यते ज्ञानं योगो धर्म च लक्षणम्।

योगः परं तपो ज्ञेयः तस्मात्योगं समभ्यसेत्।।

अर्थात्– 'योग से ज्ञान प्राप्त होता है, योग ही धर्म का लक्षण है, योग ही परम तप है, अतः प्रयत्न के साथ योग का ही अभ्यास करना चाहिए।'

योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पाप पंजरम्।

प्रसन्नं जायते ज्ञानं ज्ञानान्निर्वाणमृच्छति।।

''क्योंकि योगाग्नि अशेष पाप पंजर को जल्दी ही जला देती है। अतः, निर्मल ज्ञान को पाकर योगी निर्वाण पद को पा लेता है।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा :–

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिको।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।

(गीता 6/46)

'योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, ज्ञानियों से श्रेष्ठ है तथा कर्मकाण्डियों से भी श्रेष्ठ है। अतः हे अर्जुन तू योगी हो।'

श्रुति कहती है – **ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।** अर्थात् – बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती। **किंतु योगहीनं कुतः ज्ञानम्।** अर्थात् – योग के बिना ज्ञान हो नहीं सकता।

नाम जपो हँसते रहो, चिंता का क्या काम?

हर पल अच्छे बुरे में, रक्षक हैं प्रभु राम।।

योग बने प्रभु राम से, जपे नाम निष्काम।

देह रहे सुख धाम है, देह तजे हरि धाम।।

गुरु जी आते हैं...

जगदीश राए बंसल 'अधम', नई दिल्ली

सुन कर करुणा पुकार, गुरुजी आते हैं।
नैया लगा दें पार, जब लल्ला बुलाते हैं।।

जन्म जन्म मैंने पाप कमाए
गुरु वचन कभी याद न आए
क्षमा करो सरकार,
गुरु जी .. ..

मुझे चौरासी में भटकना हो ग
रो रो कर सिर पटकना होगा
कर दो मेरा उद्धार,
गुरु जी ....

शरणागत की झोली हो भरते
शक्ती का संचार हो करते
दर्शन हैं खुले दरबार,
गुरु जी ....

इक अर्जी ले कर आया हूँ
किए कर्म से घबराया हूँ
अधम को शरण दरकार,
गुरु जी ....

21वीं सदी में हिन्दू सन्तों के दायित्व

डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

समय परिवर्तनशील होता है। स्थापित व्यवस्था में स्वार्थवश कुछ विसंगतियाँ और दोष पैदा होते रहते हैं और नवयुग की आहट से नये नियमों और आचरण की आवश्यकता उत्पन्न होती है। अतः उन दोषों का परिहार कर तथा नवीन को सम्मिलित कर नई व्यवस्था बनाई जाती है। इस नवीनता के प्रेरक और स्थापक नई पीढ़ी के लोग होते हैं। नई पीढ़ी का अर्थ केवल युवक से ही नहीं होता बल्कि नई सोच से होता है। यह सोच उन सबको बुरी लगती है जो अंधविश्वास, आडम्बर और निजी स्वार्थ के लिए व्यवस्था चला रहे होते हैं। फिर, ठीक है, सब चलता है की भावना हमें परिश्रम से भी तो बचाती है अतः पुराने और स्थापित लोग विरोध पर उतर आते हैं और अपने अनुयाइयों के सहारे आक्रामक होकर प्रगतिशील व्यक्तियों को पराजित करने के लिए अनैतिक कृत्यों के करने से भी नहीं डरते।

मैं बात कर रहा हूँ हिन्दू धर्म स्थलों, आश्रमों और साधु सन्यासियों की जो सुबह घंटा बजाकर, आरती पूजन करके अपने कार्य की इति समझ लेते हैं। कुछ और बड़े सन्यासी ध्यान पूजा आदि में जुटे रहते हैं। यह व्यवस्था उस युग में तो ठीक थी जब हमारा देश केवल हिन्दू राष्ट्र था तथा व्यवस्था चार वर्णों और चार आश्रमों में विभाजित थी। ब्राह्मण (जाति नहीं, बुद्धिजीवी वर्ग) समाज के कोलाहल से दूर रह कर आश्रमों में गुरुकुल चलाते थे और वहाँ शास्त्र और शस्त्रविद्या की शिक्षा प्रदान करते थे। दूसरी ओर समाज के सभी लोग ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रम के बाद वानप्रस्थ पचास प्रतिशत बार (फिफ्टी परसेंट टाइम्स) आश्रमों में रहकर साधना और सन्यास अवस्था में मोक्ष प्राप्त का लक्ष्य रखकर आगे बढ़ते थे। संक्षेप में कहें तो वे एकल उपासना पद्धति का एकांत में अनुसरण कर अपने तक ही सीमित रहते थे।

परन्तु वर्तमान में अर्थ आधारित, वैश्वीकरण से समाज में व्यापक परिवर्तन आया है। इसके अतिरिक्त भारत अब एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र बन गया है अतः हिन्दू धर्म (वैदिक धर्म) के समक्ष अनेक नई चुनौतियाँ उत्पन्न हो गई हैं, हो रही हैं। यदि ये सन्यासी गण टी.वी. देखते हों (शायद अधिकांश स्वामी सन्यासी देखते हैं) और यदि, उन्होंने निरीक्षण किया हो तो देखा होगा कि बहस के दौरान हिन्दू सन्यासी (आर्य समाजी सन्यासियों को छोड़कर) पराजित से दिखाई देते हैं। कारण स्पष्ट है कि उन्होंने प्राचीन ग्रंथों को पढ़ना लिखना छोड़ दिया है। वे केवल हरि नाम को सर्वोपरि मानकर और जपकर अथवा सुबह शाम 15–20 मिनट की पूजा करके न तो अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर रहे हैं न समाज के प्रति अपना दायित्व निभा रहे होते हैं। उनका प्रयोजन केवल गेरुआ वस्त्र अथवा सफेद वस्त्रों तथा लम्बी दाढ़ी रखकर

अपने पैर पुजवाना और दान दक्षिणा लेना रह गया है। तीर्थ स्थलों पर भंडारे के दौरान सामाजिक दायित्व से विहीन से इन साधुओं की सैकड़ों में भीड़ देखी जा सकती है। ये कथित त्यागी अमीरों द्वारा भंडारे के उपरान्त बांटे जाने वाले छाते, चप्पल अथवा अल्पमूल्य के वस्त्रों के पीछे आपस में खूब लड़ते झगड़ते देखे जा सकते हैं। कविवर तुलसीदास ने लिखा है– 'नारि मुई घर संपति नाशी, मूंड मुड़ाय भये सन्यासी'', परंतु वर्तमान में तो वे दाढ़ी बढ़ाकर सफेद अंबरा लपेटकर स्वामी, सन्यासी और परमहंस बन जाते हैं परंतु उनका मन कंचन और कामिनी में ही उलझा रहता है। आश्रम उनके परिवार के भरण पोषण के साधन बन जाते हैं। इसकी सत्यता हमें टी.वी. और अखबारों द्वारा किये जाने वाले ''स्वामी कारनामों के भंडाफोड़'' में दिखाई देती है। इनका प्रयास येन केन प्रकारेण आश्रम की सम्पत्ति पर कब्जा करना रहता है।

ये थे आश्रमों / मठों में रहने वाले कथित स्वामी सन्यासियों के आचार। अब बात करते हैं उन कतिपय सुझावों की जिनसे इस वर्ग की आत्मिक उन्नति हो और साथ ही साधु समुदाय समाज के लिए उपयोगी बन सके, उनकी छवि सुधरें जिसका उनके व्यक्तित्व विकास में योगदान है। मनोविज्ञान में व्यक्तित्व की निम्नलिखित परिभाषा बताई गई है – 'व्यक्तित्व व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक गुणों का वह गतिशील संगठन है जो उसका समाज से अनोखी रीति से समायोजन कराता है और समाज को लाभान्वित करता है।' उपरोक्त दृष्टिकोण से देखें तो इस श्रेणी में स्वामी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द और दयानन्द सरस्वती जैसे लोग आते हैं जो सन्यासी, सिद्ध, सात्विक और संयमी तो थे ही साथ ही उन्होंने समाज की कुरीतियां हटाने में तथा शिक्षा और आध्यात्मिकता को बढ़ाने में योगदान दिया। क्या हम प्रात: कालीन आरती और ध्यानादि के बाद आत्मनिरीक्षण करके अपनी समाजोपयोगी दिनचर्या निर्धारित करते हैं? अथवा सायंकालीन आरती के बाद क्या रात्रि में अपना मूल्यांकन करते हैं? हाँ हम करते हैं तो केवल अपने चरणों का मूल्यांकन (जिनके छुलवाने से हमारा अहं संतुष्ट होता है) और लक्ष्मी का जिससे हमारे वाहन की व्यवस्था बनती है और रुतबा बढ़ता है। हम समवेत स्वर की अपेक्षा गला फाड़कर आरती गाते हैं ताकि लोग समझें कि हम बड़े भक्त हैं जबकि शास्त्रों में ऐसा निषेध है और ऐसा करना पुण्य नाशक बताया गया है, परंतु हम पढ़ें तो।

यदि हम भूतकाल की ओर देखें कि शंकराचार्य ने देश की चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित करके राष्ट्र को धार्मिक एवं सांस्कृतिक एकता प्रदान की थी और वर्तमान में शंकराचार्य पद के प्रत्याशी का चयन उसकी विद्वत्ता और तीनों मठों के आचार्यों द्वारा स्वीकृत के बाद होता है। तुलसी और कबीर ने शारीरिक श्रम भी किया और समाज को जागृति दी, कुरीतियों के विरुद्ध चेतना दी। लोकमान्य तिलक द्वारा महाराष्ट्र में 'गणेशोत्सव' का उद्देश्य भी यही था। आज स्वामी अग्निवेश तर्कों और विद्वता के सहारे सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध अलख जगा रहे हैं तो दूसरी ओर स्वामी रामदेव शारीरिक–मानसिक निरोगी बनाकर राष्ट्र

चिंतन को जगा रहे हैं। गोरखपुर स्थित गोरखपीठ के महंत लोग चाण्डालों और कथित नीच वर्ग के साथ बैठकर भोजन करते हैं और सामाजिक समरसता का संदेश देते हैं। आचार्य श्री राम "गायत्री यज्ञ" और वेद विश्वविद्यालय के माध्यम से ज्ञान ज्योति प्रसारण कर रहे हैं। इनकी ओर उन कथित साधु संतों का ध्यान क्यों नहीं जाता? 'संत को कहा सीकरी सो काम।' मठ और आश्रम की महंत गरीरी व्यवसाय नहीं है। जहाँ व्यवसाय है वहाँ मुकदमे हैं। ईसाई धर्म और इस्लाम में चर्च और मस्जिद में सब जातियों के लोग एक साथ जाते हैं परन्तु हमारे आश्रमों में जाति व्यवस्था के दो उद्देश्य हैं. (1) सामान्य सीधे सादे व्यक्ति से उसकी जाति पूछकर उसे उपासना से रोका जाता है, अर्थात् हम समाज को जोड़ने की अपेक्षा तोड़ते हैं। (2) अपनी महंतई और गुरुता सिद्ध करने के लिए हम अपनी बिरादरी को जोड़ते हैं ताकि मातजी के काले धंधे को उसकी जाति के लोग संरक्षण प्रदान करें।

अमृतसर का स्वर्णमंदिर अथवा गुरुद्वारे हमारे लिए कारसेवा ऊँचनीच विरोध और समाजसेवा का आदर्श क्यों नहीं बनाते? क्यों नहीं है हमारा आदर्श 'तिरुपति बालाजी देव स्थानम' है? जहाँ करोड़ों का चढ़ावा आता है परंतु साथ ही मेडिकल कॉलेज, इंजीनियरिंग कॉलेज और सैकड़ों समाज सेवी संस्थायें चल रही हैं। आज हमारी नई पीढ़ी अपने धर्म, संस्कृति और संस्कारों से अनभिज्ञ है। कारण स्पष्ट है : हमारे संतों की उदासीनता। हमारे आश्रमों में पुस्तकालय नहीं होते हैं तो फिर पढ़ने पढ़ाने (यानी परिप्रश्न) की भारतीय परंपरा का तो सवाल ही नहीं। जब हम **निरक्षर भट्टाचार्य** हैं तो क्या सिखायेंगे। परनिंदा से बड़ा सुख कोई नहीं होता सो हम रातदिन उसी में तल्लीन रहते हैं। अपने आश्रम 'सवांई' के पास आगरा में दयालबाग – राधा स्वामी संप्रदाय केन्द्र समाज सेवा और शिक्षा क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान कर रहा है।

अब समय आ गया है कि 21वीं सदी के बदलते परिवेश में सन्यासी वर्ग क्रमशः आत्मनिरीक्षण, आत्ममूल्यांकन और आत्मनियंत्रण की प्रक्रिया अपनाकर योगेश्वर प्रभु रामलाल जी और कर्मयोगी गुरुवर चन्द्रमोहन जी तथा उपरोक्त वर्णित साधु सन्तों का अनुसरण करके उनके सपनों को साकार करें और समाज को अपनी क्षमताओं और योग्यताओं का अवदान कर ऋण मुक्त हों। यही होगी उन महापुरुषों की सच्ची उपासना।

सम्पर्क :– डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी
(लेखक राजकीय उ.शि.सं.अ.प्रा. प्राचार्य हैं)
19 "क" बीरापुरी कालोनी
गोरखपुर
दूरभाष – 0551–2200036

सिद्ध-योग

डॉ. जगदीश शरण विलगइयाँ मधुप (दतिया)

योग मिला है, श्री प्रभु जी से,
करके दुष्कर्मों को क्षीण।
देकर कौशल काम सभी में,
हमें बनाता परम प्रवीण।
मद हरता है सकल शीघ्र ही,
और सभी की बाधाएँ,
तन मन सब निर्मल कर देता
पूरी हों सब इच्छाएँ।
संकल्प और विकल्प नष्ट हों,
शिव समाधि में होता लीन।
जिससे 'सिद्ध-योग' का साधक,
कर सकता है सृष्टि नवीन।
देता है वह सकल सृष्टि को,
सत्य शिवम् सुन्दरम् ज्ञान।
उसके छू देने से ही जड़,
चेतन बन जाते भगवान्।
शतक्रतु सहित देव सब मिलकर,
करते हैं उसका गुणगान।
जन गण मिल सब योग करो नित,
श्री प्रभुजी को करो प्रणाम।
योग शक्ति भारत की प्रतिभा,
"मधुप" यही ईश्वर का धाम।

श्री गीतामृत पदावली

प्रेषक : डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

(गतांक से आगे)

दुख-दायक ही होते अर्जुन! बाह्यस्पर्श-जनित सुख-भोग।
आदि-अन्तवाले हैं, इनमें रमते कभी न ज्ञानी लोग ।।22।।

मरण-काल तक काम-क्रोध का सह सकता जो वेग सभी।
उसी पुरुष को तुम हे अर्जुन! योगी कहना और सुखी।।23।।

जिसके भीतर दिव्य ज्योति है, जिसे आंतरिक सुख-आराम।
सदा ब्रह्ममय वह योगी ही, पा लेता है पद निर्वान।।24।।

पापहीन ऋषि संयमवाले, जो करते जग का कल्याण।
जिनके संशय छूट गए हैं, पा लेते वे पद निर्वाण।।25।।

काम-क्रोध को जीता जिसने, तथा ब्रह्म का जिसको ध्यान।
आत्म-ज्ञानवाले उस यति को, पार्थ! सुलभ है पद निर्वान।।26।।

दृष्टि भवों के बीच लगाकर, तज इन्द्रिय-सुख का सब ध्यान।
पार्थ! नाक में चलने वाले नियमित करके प्रान-अपान।।27।।

इन्द्रिय, मन औ' बुद्धि रोककर, मोक्ष-परायण जो रहते।
इच्छा, क्रोध तथा भय तजते, उनको मुक्त पुरुष कहते।।28।।

अखिल जगत् का स्वामी मैं ही यज्ञ-तपों का करता भोग।
मुझे जानकर जग-हितकारी, परम शान्ति पाते हैं लोग।।29।।

('श्रीगीतामृत-पदावली' का कर्म-संन्यास-योग नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण)

अध्याय-6

श्रीभगवानुवाच
उचित कर्म जो करता, जिसको फल की इच्छा नहीं कहीं।
योगी-संन्यासी वह ही, जो कर्माग्नि-विहीन नहीं।।1।।

जानो उसको योग, धनंजय! जिसे कहा करते संन्यास।
संकल्पों के त्याग बिना है, सम्भव कभी न योगाभ्यास।।2।।

योग चाहने वाले मुनि का, साधन 'कर्म' कहा जाता।
तथा योग में सुस्थिरता का, कारण 'शम' है कहलाता।।3।।

विषय भोग में या कर्मों में, जो आसक्त नहीं रहते।
सभी कामना जो तज देते, उनको ही योगी कहते।।4।।

आत्मोद्धार करे जो खुद ही, पतन न अपना करे कभी।
स्वयं मित्र, बैरी भी अपना, अपने उसके लोग सभी।।5।।

स्वयं मित्र है अपना जिसने, अपने को है जीत लिया।
अपना ही बैरी वह, जिसने आत्म-दमन है नहीं किया।।6।।

शान्त जितेन्द्रिय जन की आत्मा, रहती अर्जुन एक समान ।
सर्दी गर्मी सुख दुःख आवें, अथवा होवे मान अपमान।।7।।

अटल जितेन्द्रिय, तृप्त हुआ जो पाकर ज्ञान तथा विज्ञान।
कहो उसे योगी, जिसको है मिट्टी, पत्थर, स्वर्ण समान।।8।।

वैरी मित्र उदासी जिसको द्वेषी बान्धव एक समान।
साधु-असाधु सभी सम जाने, है वह योगी पुरुष महान्।।9।।

योग निष्ठ एकान्त जगह में, रहे भजन में संतत लीन।
रहे जितेन्द्रिय, सदा अकेला, संग्रह-रहित, वासना-हीन।।10।।

कोई शुद्ध जगह निश्चित कर, सुस्थिर करके निज आसन।
अधिक न हो ऊँचा या नीचा, मृग-छाला, कुश, वस्त्रासन।।11।।

उसी जगह एकाग्रचित्त हो, मन-इन्द्रिय को कर आधीन।
आसन पर वह आत्मशुद्धि-हित, योग-साधना में हो लीन।।12।।

मस्तक, गरदन सीधी कर ले, देह न डोले तनिक कहीं।
दृष्टि लगी हो नासिकाग्र पर, देखे कुछ भी कहीं नहीं।।13।।

(शेष अगले अंक में)

आओ! श्री सिद्धगुफा, पुण्य बेला आई है।

राजीव कुमार, अम्ब, ऊना (हि.प्र.)

श्री प्रभुजी की तप स्थली श्री सिद्ध गुफा सवांई।
हर बार गुरु भक्तों ने श्रद्धा की अलख जगाई।।
आओ! श्री सिद्ध गुफा सवांई, पुण्य बेला आई है।।

महायोगेश्वर का पुण्य धाम। श्री चंद्रमोहन लीलाधारी।
सद्‌गुरुदेव की कृपा बरसती! रज प्रसाद चमत्कारी।।
आओ! श्री सिद्ध गुफा सवांई, पुण्य बेला आई है।

श्री सिद्धेश्वर की अलौकिकता साक्षी! श्री सिद्ध गुफा कल्याणकारी।
योग प्रेम बरसाओ ! हर साल बुलवाओ बारी-बारी।।
आओ! श्री सिद्धगुफा सवांई, पुण्य बेला आई है।

श्री रामनवमी पर्व, जन्मोत्सव अखिलेश्वर का अद्‌भुतकारी।
लाखों-करोड़ों, प्रभुजी ने तारे श्री गुफा की महिमा अति न्यारी।।
आओ! श्री सिद्धगुफा सवांई! पुण्य बेला आई है।

श्रद्धालुओं को हर बार संदेशा आता! मिटते पाप भारी।
दण्डवत् प्रणाम! सर्वस्व न्यौछावर करें बारी-बारी।
आओ! श्री सिद्धगुफा सवांई! पुण्य बेला आई है।

यह ले मुनिया एक लड़का, यह ले दूसरा, यह...

प्रेषक – केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी

हमारे आपके आराध्यदेव एवं चराचर के स्वामी श्री सद्गुरुदेव जी महाराज अपने यौगिक प्रवचनों में योगी की अलौकिक आध्यात्मिक शक्ति का वर्णन करते हुए अपने मुखारविन्दु से कहते थे कि :–

> यस्मिन देशे वसति योगी, ज्ञान–ध्यान परायण:।
> सोऽपि देशो भवति पूतो, किम् पुन: तस्य बान्धवा।।

अर्थात् ज्ञान ध्यान युक्त योगी जिस देश में निवास करता है, वह देश ही पवित्र हो जाता है, उसके बन्धु–बान्धवों का कहना ही क्या है? अर्थात् वे तो अवश्य ही पवित्र एवं योगसाधक बनने का अधिकारी अवश्य–अवश्य बन ही जाता है। हमारे दादा गुरुदेव सम्पूर्ण योग सम्पत्तियों के एक मात्र सर्वेसर्वा महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने दो अवधि कालों को मिलाकर लगभग पन्द्रह–सोलह साल तथा उनके लाड़ले शिष्य बेजोड़ गुरुभक्त श्री सद्गुरुदेव जी महाराज ने लगभग चौंतीस–पैंतीस वर्ष श्री सिद्धगुफा सवाई धाम पर जो आगरा जनपद के एत्मादपुर तहसील में स्थित है, स्थूल शरीर से विराजमान रहने की अहैतुकी कृपा की है। परिणाम स्वरूप, सवाई गाँव, अन्य गाँवों से कुछ विलक्षण होना चाहिए एवं है भी। दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज द्वारा, लौकिक रूप में प्रथम दिवस निवास करने के बाद से आज तक इस गाँव में न तो कभी ओले पड़े एवं न कभी जान–माल की नुकसान वाली आग लगी। कृपाओं पर यदि दृष्टि डाली जाय तो टहलने की नौबत से भी, इस गाँव का कोई प्राणी, इस सिद्ध सेवित श्री सिद्धगुफा सवाई धाम पर आना–जाना प्रारम्भ किया तो उसकी लौकिक मनोकामना पूर्ण हो गयी। इसी धाम पर इसी गाँव के एक परिवार पर हुई कृपा का वर्णन करके, यह समझने एवं समझाने का प्रयास किया जा रहा कृपा प्रसंग अत्यन्त छोटा है परंतु उसका आध्यात्मिक प्रभाव बहुत ही श्री गुरुप्रेम एवं गुरुकृपा से ओतप्रोत है।

इसी गाँव के हमारे एक ज्येष्ठ आदरणीय गुरुभाई थे जिनका नाम श्री दौलत सिंह जी था। निहायत शरीफ, ईमानदार एवं अनन्य गुरुभक्त प्राणी थे। उनके दो पुत्र हुए। दोनों ही कुशाग्र बुद्धि के एवं आज्ञाकारी थे। इनके पूरे परिवार का एवं विशेष रूप से इनके दोनों पुत्रों का श्री सिद्ध गुफा धाम सवाई से निरन्तर सम्बन्ध बना रहा। संस्कार वशात इनके एक पुत्र का जवानी में ही स्वर्गवास हो गया। उन्हें मात्र दो बच्चियाँ हैं। इनके दूसरे पुत्र का नाम श्री लक्ष्मण सिंह जी है तथा इस समय ये जनता इन्टरमीडिएट कॉलेज एत्मादपुर में अध्यापक के

पद पर कार्यरत हैं। उस समय तक, जब का यह कृपा प्रसंग है श्री लक्ष्मण सिंह जी को केवल दो लड़कियाँ ही थीं। आज के जमाने में यदि किसी परिवार में चार लड़कियाँ ही हो जायं एवं एक भी पुत्र न हो उस परिवार के मुखिया का चिन्तित रहना स्वाभाविक ही है। पिता–पुत्र दोनों (परम आदरणीय हमारे गुरुभाई श्री दौलत सिंह जी तथा उनके लायक बेटे श्री लक्ष्मण सिंह जी) थोड़ा उदास रहने लगे। पिता–पुत्र दोनों कुछ समय के बाद यह सोचने को बाध्य हो गये कि श्री गुरुदेव भगवान से पुत्र प्राप्ति हेतु प्रार्थना कर ही देनी चाहिए। आदरणीय श्री दौलत सिंह जी घर–गृहस्थी के कार्यों से जब भी फुरसत पाते श्री सवाई धाम पर आ जाया करते थे, इनका यह स्वभाव उसी समय से चलता आ रहा था, जब श्री गुरुदेव भगवान ने श्री सवाई धाम को केन्द्र बिन्दु मानकर यहाँ निवास करना एवं यहीं से अन्यान्य स्थान पर जाकर अपना योग प्रचार कार्यक्रम करना आरम्भ किया था। श्री लक्ष्मण सिंह जी का यह नियम बन गया है कि वे कॉलेज आते समय श्री सवाई धाम पर प्रणाम किया करते हैं तथा यदि समय मिल गया तो सायंकालीन आरती में उपस्थित रहना और कम से कम एक या तीन भजन सुनाना। तदनन्तर आरती में सम्मिलित रहना तथा प्रसाद लेकर योगेश्वर श्री रामलाल जी के स्वरूप को साष्टांग प्रणाम करना एवं उसके बाद घर जाकर भोजन करके, अथवा घर–गृहस्थी का कोई कार्य हो तो उसे करके सो जाना।

एक दिन ऐसा संयोग उपस्थित हुआ कि भजन गाने वालों की संख्या काफी थी। हमारे आपके गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज श्री सद्गुरुभवन के सामने आराम कुर्सी पर प्रसन्न मुद्रा में विराजमान थे। सबसे अन्त में श्री लक्ष्मण सिंह जी ने महाप्रभु श्री रामलाल महाराज के स्वरूप के सामने स्वनिर्मित भजन सुनाया। भजन का अर्थ यह था कि हे गुरुदेव! आप तो सर्वज्ञ हो, सबके मन की जानने वाले हो। मैं तो भजन द्वारा आपको अपना दुःखणा सुना रहा हूँ, आप तो बिना बताये ही जान जाते हैं, क्योंकि आप अन्तर्यामी हैं। मेरे घर चार देवियों ने जन्म लिया है और मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार उनका पालन–पोषण कर रहा हूँ। एक बच्ची इण्टरमीडिएट में है, दूसरी हाईस्कूल में, तीसरी कक्षा सात में और चौथी प्राइमरी स्कूल की विद्यार्थी है। क्या मेरे भाग्य में पुत्र नहीं लिखा है, और यदि नहीं लिखा है तो आप तो समर्थ हैं कृपया एक पुत्र देने की कृपा की जाय। उसी समय उनके पिता श्री दौलतसिंह जी आश्रम में उपस्थित कुएं की जगत पर बैठकर सायंकालीन आरती होने का इन्तजार कर रहे थे। ज्योंही श्री लक्ष्मण जी का भजन समाप्त हुआ आराध्यदेव जी श्री महाप्रभु जी की आरती करने के उद्देश्य से श्री गुफा की तरफ बढ़ते हुए आवाज लगाये, 'अरे दौलत सिंह सुन रहे हो तुम्हारा पुत्र क्या भजन सुना रहा है।'

श्री दौलत सिंह ने हाथ जोड़ते हुए प्रार्थना किये, 'प्रभो! यह हमको भजन थोड़े सुना रहा है; यह तो आपको और दादा गुरुदेव श्री रामलाल प्रभुजी को भजन सुना रहा है। आप लोग सुनो एवं जानो।' उनका उत्तर सुनकर आराध्यदेव जी ने कहा कि आ जाओ। हम श्री

प्रभुजी की आरती आरम्भ कर रहे है। उपस्थित और गुरुभाईयों के साथ आज सायंकालीन आरती में पिता-पुत्र दोनों शामिल हुए। आरती के बाद श्री गुरुदेव भगवान ने सबको प्रसाद देकर विदा कर दिया एवं जब श्री लक्ष्मण सिंह को प्रसाद देने लगे तो अपने मुखारविन्द से आदेश दिये, "लल्ला! कल प्रातः काल तुम अपनी पत्नी के साथ आना। तुम दोनों स्नानादि से निवृत्त होकर बासी मुँह (बिना कुछ खाये-पीये) इस धाम पर अवश्य-अवश्य आ जाना। भूलना मत। अब तुम अपने घर चले जाओ।"

आराध्यदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर श्री लक्ष्मण सिंह चले गये एवं भोजनादि से निवृत्त होकर सोते समय अपनी सुलक्षणा धर्मपत्नी को पूरी बात बतलायी। उस रात्रि पति-पत्नी ने श्री गुरुदेव भगवान तथा महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज की करुणा एवं अहैतुकी कृपाओं का स्मरण एवं चिन्तन करते हुए व्यतीत की। प्रातः काल होते ही श्री लक्ष्मण सिंह जी अपनी पत्नी के साथ नित्य क्रिया (शौच स्नानादि) से निवृत्त होकर अलह सुबह श्री सिद्ध गुफा धाम पहुँच गये। उस समय आराध्यदेव श्री गुरुदेव भोजनालय के पास कदम्ब के पास रखी पत्थर की शिला पर अर्धपद्मासन की मुद्रा में विराजमान होकर दन्त धावन कर रहे थे। इस दम्पत्ति ने दूर से ही जमीन पर लेटकर साष्टांग प्रणाम किया। आराध्यदेव ने कहा, "गुफा में श्री प्रभु के स्वरूप के सामने बैठकर जप करो। आराध्यदेव जब दन्तधावन से खाली हुए तो वहीं बैठे-बैठे आदरणीय गुरुभाई श्री रामाश्रय जी को आवाज लगाये। आदरणीय भाई श्री रामाश्रय जी ने आवाज लगाया, 'आया जी।' एवं तेज गति से चलकर आये एवं श्री गुरुदेव के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। श्री मुख ने आदेश दिया, लल्ला! लक्ष्मण अपनी पत्नी के साथ बैठा हुआ है, उसे बुला लो तथा कमरे में से फलों की टोकरी लाओ।' आदरणीय श्री रामाश्रय जी फलों की टोकरी लेकर श्री गुरुदेव के पास खड़े हो गये एवं श्री लक्ष्मण सिंह जी सपत्नीक श्री गुरुदेव के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। आराध्यदेव ने हँसते हुए कहा कि लक्ष्मण तुम्हें लड़का चाहिए न? तदनन्तर उनकी पत्नी को सम्बोधित करते हुए बोले कि अपने आँचल में प्रसाद ले मुनियाँ। सौभाग्यवती श्री लक्ष्मण जी की भार्या ने श्री गुरुदेव के सम्मुख अपना आँचल फैलाया तो आराध्यदेव फलों की टोकरी में से एक फल निकाले। दो-तीन बार हाथ में गेंद की तरह उछलते हुए एक-एक सेब देते हुए बोले, 'यह ले मुनियाँ एक लड़का, दूसरा सेब देते हुए यह ले दूसरा लड़का, यह ले मुनियाँ तीसरा लड़का, (उसने अपना आँचल हटाते हुए कहा बस गुरुदेव बस) तब तक यह ले चौथा लड़का, यह ले पाँचवा लड़का ....)!' तदनन्तर आराध्यदेव ने ठहाका मारकर हँसते हुए कहा, 'लल्ला! लक्ष्मण आज जितने लड़के चाहिए ले ले, फिर इसके बाद लड़का मत माँगना।'

इसके बाद पति-पत्नी ने श्री गुरुचरणों को स्पर्श कर प्रणाम किया, श्री मुख ने आशीर्वाद दिया एवं आदेश दिये कि गुफा में श्री प्रभुजी को प्रणाम कर घर चले जाओ। श्री लक्ष्मण जी की धर्मपत्नी को समयान्तर से तीन लड़के हुए। चौथा बार भी लड़का होने को रह

गया, उसे साफ कराया। पाँचवी बार भी लड़का होने को रह गया, उसे भी साफ कराया। पाँचवी बार साफ कराने के बाद उनकी पत्नी ने कहा कि गुरुदेव जी से प्रार्थना करिये कि अब लड़का देना बन्द कर देने की कृपा की जाय। गुरुभाई श्री लक्ष्मण जी ने श्री चरणों में प्रणाम किया एवं हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये। श्री मुख ने कहा, 'कहो लल्ला! क्या बात है।' श्री लक्ष्मण जी ने प्रार्थना किया कि प्रभो! अब और लड़के न देने की कृपा की जाय। आपने तीन लड़के दिये हैं, बहुत हैं। श्री गुरुदेव ने उनकी बात सुनकर कहा, अच्छा ठीक है। इतने में श्री लक्ष्मण सिंह जी के पिता जी आश्रम की तरफ आते दिखलाई दिये। श्री गुरुदेव जी महाराज ने अपने मुखारविन्द से कहा, 'लल्ला दौलत सिंह इधर आओ।' श्री दौलत सिंह जी ने आकर श्री गुरुदेव भगवान के युगल चरणों में प्रणाम किया एवं हाथ जोड़कर खड़े हो गये। आराध्यदेव ने मधुर मुस्कान के साथ कहा, 'मैं इस लल्ला। को लड़का देना चाहता हूँ एवं यह मना कर रहा है।' श्री दौलत सिंह जी ने कहा, 'आप की माया आप ही जानो।' अपने परम आदरणीय गुरुभाई श्री देवीप्रसाद शर्मा जी द्वारा श्री गुरुदेव भगवान के प्रति समर्पित ये पंक्तियाँ अनायास ही याद आ रही हैं :-

तुमने अपने शक्ति कोष से, भर दी उसकी झोली।
श्रद्धा भरे ह्रदय से जिसने, कुटि तुम्हारी खोली।।

एक और मिरजापुर मण्डल के हमारे परम गुरुभक्त, गुरुभाई ने गुनगुनाया है-

जिस पर हो उनकी नजरें करम, तो मंजिल उसकी दूर नहीं।
बस नजरें करम पाने के लिए, सद्‌गुरु को रिझाना पड़ता है।।
ईश्वर का मिलना कठिन नहीं, सद्‌गुरु का मिलना मुश्किल है।
पूरण सद्‌गुरु पाने के लिए, सर भेंट चढ़ाना पड़ता है।।
मन्दिर में गया, मस्जिद में गया, पाया न पता जंगल में गया।
ठोकर खाई तब याद आया, सद्‌गुरु दर जाना पड़ता है।।

गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत्।
गावो भूतं च भव्यं च गावः पुष्टिः सनातनी।।

अर्थात् गौएँ समस्त प्राणियों की प्रतिष्ठा (आधार) हैं और गौएँ ही उनके लिए महान् मंगल की निधि हैं। गौएँ ही भूत और भविष्य हैं। गौएँ ही सब समय पुष्टि का साधन हैं।

गो-सेवा करिये और राष्ट्र को सुरक्षित एवं सम्पन्न बनाइये।

सिद्धयोग

आय-व्यय का विवरण वर्ष - 2010-11

आय		व्यय	
पिछला शेष	2,06,976/-	कागज व छपाई	1,20,641/-
वार्षिक शुल्क	1,24,535/-	कार्यालय खर्च	10,156/-
सहयोग राशि (सूची निम्न है)	76,493/-	बैंक में जमा	2,77,668/-
ब्याज बैंक से प्राप्त	10,052/-	नगद (हाथ में)	9,591/-
कुल योग -	4,18,056/-	कुल योग -	4,18,056/-

सहयोग राशि दाताओं की सूची

श्री त्रिपुरारी पाण्डेय, बलिया	4500/-
श्रीमती लाली देवी, बलिया	1200/-
श्री लल्लनसिंह, बलिया	500/-
श्री दिनेश चन्द्र गुप्ता, करौली	101/-
श्री विकास शर्मा, बंगलौर	151/-
श्री वैभव दयाल, कल्यानपुर	1100/-
श्री रजनीश, गोरखपुर	2150/-
श्रीमती दीप्ति सिंह, अहमदाबाद	21000/-
श्रीमती गीता शर्मा, वाराणसी	360/-
श्री सुरेश चन्द्र गुप्ता, जालौन	551/-
श्री ललित शर्मा, कालका	2000/-
श्री कुँवर ए.के. सिंह, कछवा	2000/-
श्री सूरज गुप्ता, दिल्ली	3100/-
श्री राम चन्द मलिक, करनाल	500/-
श्री जे.पी. गुप्ता AEN गंगापुर	251/-
श्रीमती कल्पना गुप्ता, लखनऊ	2110/-
श्री जगदीश प्रसाद गुप्ता, काल्पी	1100/-
श्रीमती ओमवती देवी, गाजियाबाद	500/-
श्री अशोक कुमार गुप्ता, मेरठ	2100/-
श्री सुरेन्द्र रावल करनाल (कोन्ड)	505/-
श्री जगदीश प्रसाद गुप्ता, काल्पी	501/-
श्री सी.बी. सिंह, गाजियाबाद	1201/-
श्री राजकुमार पुत्र भागमल, हरियाणा	21/-
श्रीमती सरिता अग्रवाल, बिकानेर	10000/-
कुल योग -	76,493/-

योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज

एवम्

श्री सिद्धगुफा

कुँवर ए.के. सिंह, कछवा, मीरजापुर

जगदात्मा अखिल लोक पावन भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी ने गीता के चतुर्थ अध्याय में इस बात को स्वीकार किया है कि मैं अजन्मा, अव्ययात्मा एवं प्राणीमात्र का ईश्वर होते हुए भी समय–समय पर अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर अपनी आत्म–शक्ति से संसार में प्रगट हुआ करता हूँ– भगवान जगदात्मा श्री कृष्णचन्द्र जी कहते हैं–

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानि र्भवति भारत्।

अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्म संस्थापनार्थाय, संभवामि युगे युगे।।

अर्थात् जब–जब लोगों के हृदय में ग्लानि पैदा होती है तब–तब मैं अधर्म के नाश के लिए, साधुओं के परित्राण के लिए, दुष्कृतों के विनाश के लिए एवं धर्म की संस्थापना के लिए अपने आपको प्रगट किया करता हूँ।

भगवान् श्री कृष्ण जी का यहाँ पर अभिप्राय अपने निजी व्यक्तित्व के रूप से नहीं है उन्होंने स्वयं अपने मुखारविन्द से परासत्ता की ओर संकेत किया है–

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा, भूतानामीश्वरोऽपि सन्।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय, संभवाम्या त्यमायया।।

अर्थात् अज और अव्यय आत्मा आदि संकेत उस परासत्ता की ओर के संत है जो जन्म, मरण रहित अव्यक्त सत्ता है।

कलिकाल के घोर अन्धकार के समय में जबकि संसार के आस्तिकवाद को मानने वाले मनुष्य अधिक से अधिक कर्म व उपासना के दायरे में निहित थे। पौराणिक रूढ़िवाद का बहुत अधिक प्रचार था, ऐसे भीषण समय में **''अखण्ड–ज्योति योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज''** का प्राकट्य अमृतसर में हुआ। उनके जन्म काल में ही बहुत ही शुभ ग्रहों का उदय हुआ। महाप्रभु जी के पिताश्री पंडित गंडाराम जी महाराज ज्योतिष विद्या के बहुत बड़े विद्वान थे। उन्होंने स्वयं अपनी ज्योतिष विद्या–गणना के अनुसार गृह–नक्षत्रों को समझकर के भली–भांति जान लिया था कि यह होनहार बालक कोई 'महान विभूति' है। इनके गुण–धर्म बड़े ही विलक्षण हैं। संसार को यह बहुत बड़ा उत्कर्ष देगा। जिस माता श्री

भाग्यवती जी के उदर से श्री प्रभुजी ने जन्म धारण किया, गर्भवास काल में उनका तेज असहनीय था, उनकी वाणी उस समय सिद्ध थी। मस्तिष्क पर विचित्र आभा थी, आकृति दर्शनीय हो गई थी। उस आकृति को देखने वाले व्यक्ति उनकी महान आभा को देखकर स्वतः ही उनकी ओर झुक जाते थे और आशीर्वाद की अभिलाषा से स्वतः ही नमन करते थे। गर्भवास काल में जिस प्रकार का जो तेज माता के उदर में वास करता है उस समय वह माता उसी प्रकार के तेज को धारण कर लिया करती है। जिस समय स्वयं जगपाला श्री कृष्ण ने अपनी तेज से माता देवकी के पेट में निवास किया था, उस समय स्वयं कंस को भी आश्चर्य हुआ था और उसने भी अनुभव किया था, अर्थात् कंस ने उसे विशेष प्रभायुक्त देखकर जो अपने उस विशेष तेज से कंस के कारागार को भी प्रकाशित कर रही थी। जिसकी साधारण मुस्कुराहट भी पवित्रता से भरी हुई थी। माता देवकी की ऐसी स्थिति को देखकर कंस ने कहा कि अहो! निश्चय ही इसके पेट में मेरे प्राणों को हरने वाले 'हरि' ने निवास किया है, क्योंकि पहले यह इस प्रकार की नहीं थी। इसी प्रकार माता भाग्यवती जी की भी आभा उस समय बहुत ही विलक्षण दिखाई देती थी, श्री भाग्यवती माँजी उस समय प्राणीमात्र को अभय देने वाली तेज पुंज राशि बनी हुई थी। उन्हें स्वयं यह आश्चर्य था कि उनके मन में इतने अद्भुत–अद्भुत दिव्य स्फुरण उनके मन में कहाँ से आते हैं। जिस समय परम करुणार्णव योगयोगेश्वर अखण्ड–ज्योति श्री महाप्रभुजी ने जन्म ग्रहण किया उस समय सभी प्रकार के मंगल अभिनय अनायास ही होने लगे और पंडित गंगाराम जी के घर में सब प्रकार से शुभ एवम् मंगल का उदय हुआ। परम प्रभुजी के बाल्यकाल में अनेक चमत्कारिक घटनाएँ हुई, अनेकानेक सिद्ध महात्माओं ने उनके पवित्र चरणारविन्दों के दर्शन करके अपने आपको सफल मनोरथ बनाया।

योग–योगेश्वर श्री प्रभुजी महाराज सवाई ग्राम में लाला. प्यारे लाल के यहाँ निवास करने के बाद श्री प्रभुजी के मन में एकान्तवास की भावनाएँ अधिकाधिक होने लगीं। जिस दिन से लाला प्यारेलाल के स्थान पर श्री प्रभुजी ने निवास किया, उसी दिन से लाला प्यारेलाल के घर में सकल सम्पत्तियां वास करने लगीं, घर धन–धान्य से पूर्ण हो गया। सकल व्याधियाँ दूर हो गई, विघ्न–बाधाओं का सर्वथा अभाव हो गया। दिन दूना रात चौगुना सम्मान बढ़ने लगा। उन्हीं दिनों ला. प्यारेलाल के घर में उनके पौत्र का जन्म हुआ, इसी पर ला. प्यारेलाल ने श्री प्रभुजी के चरणों में प्रार्थना की, कि प्रभु आप कृपा करके हमें कोई सेवा बतलाइये जिससे मैं करके अपना जीवन धन्य सफल बना सकूं। श्री प्रभुजी प्रसन्नता में आकर आज्ञा दी कि हम एकान्तवास करना चाहते हैं, इसलिए तुम एक गुफा तैयार कराओ, जिसमें हम हर प्रकार के जन समुदाय से अलग रह सकें। उसके साथ एक तालाब का निर्माण कराओ, जिसमें हम स्नान कर सकें। ला. प्यारेलाल ने परम आदरणीय आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की पवित्र आज्ञा को सुनकर अपने बाग में मजदूरों को लगा करके व गाँव के प्रेमी जनों

को साथ लेकर एक तालाब खुदवाई। तालाब के पास में ही कदम पेड़ के नीचे गुफा खुदवाई, जिस समय लोग गुफा खोदकर निर्माण कार्य कर रहे थे, तो श्री प्रभुजी ने मना किया कि यहाँ गुफा नहीं बन सकती, किंतु गाँव के लोगों ने उनकी आज्ञा को नहीं माना और प्रेम विभोर होकर वहाँ ही गुफा का निर्माण करने लगे। बहुत प्रयत्नों के बाद गुफा तैयार हुई, किंतु जिस समय वे लोग गुफा बनाकर बाहर बैठे तो अचानक गुफा की छत गिर गई। लोगों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ, लोगों के विचार में आया कि शायद छत पतली रह गई होगी, थोड़ी और मोटी होनी चाहिए थी, इन्हीं सब विचार के साथ वहीं पर दुबारा गुफा बनानी प्रारम्भ की, परंतु आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने बार–बार मना किया कि यहाँ पर गुफा नहीं बनेगी। किंतु लोगों को अपनी बुद्धि एवं बल पर बड़ा ही विश्वास था कि हम यहाँ पर गुफा बना लेंगे। इसी आधार पर लोगों ने बड़े ही प्रयत्न के साथ उसी स्थान पर दूसरी गुफा तैयार की किंतु वह भी कायम नहीं रह पाई, थोड़ी देर पश्चात् वह भी गिर गई। अन्ततः लोगों ने विचार किया कि श्री प्रभु जी का यहाँ संकल्प नहीं है। इसलिए अब इन्हीं से पूछकर इन्हीं के बतायी जगह पर गुफा का निर्माण करना चाहिए। लोगों के पवित्र विचारों को सुनकर श्री प्रभुजी ने प्रसन्नतापूर्वक बाग के दक्षिणी भाग में नीम के पेड़ों के बीच पथरीली–कंकरीली जमीन में गुफा बनाने की आज्ञा प्रदान की। लोगों ने बड़े ही उत्साहपूर्वक कई दिन लगाकर गुफा का निर्माण किया, जो आज 'श्री सिद्धगुफा' के नाम से विश्व विख्यात है।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने यहाँ पवित्र भूमि में काफी दिन निवास किया। एवं श्री प्रभुजी के जीवन चरित्रों में अनेकानेक घटनाएँ घटीं। **पातंजलि योग दर्शन बतलाता है कि–**

स्थूलस्वरुप सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्व संयमाद्भूतजय:।
ततोऽणिमादि प्रादुर्भाव: कायसत्तद्धर्मनिभिघातश्च।।

अर्थात् महाभूतों के स्थूल स्वरूप, सूक्ष्म अन्वय अर्थात् इन पाँच रूपों के अन्दर संयम करने से योगी भूतजयी बन जाता है और इसी के फलस्वरुप अणमादिक सिद्धिये उपलब्ध होती है और रूप लावण्य बज्रकाय आदि काय सम्पत्ति गिरावट के दायरे से आगे निकल जाती है अर्थात् भूतजयी योगी को काय सम्पदा नभिघात स्वतः ही सिद्ध हो जाता है। ऐसे ही व्यक्ति को आकाशगमन आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। भगवान पतंजलि देव बतलाते हैं–

श्रोत्राकाशयो: सम्बन्ध–संयमाद्दिव्यं श्रोत्रम्।।

अर्थात् काया और आकाश के सम्बन्ध में शरीर में रुई के मानिन्द हल्कापन आ जाता है, तब वह योगी समाधि के बल से आकाश गमन करता है। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी श्री सिद्धगुफा पर निवास कर रहे थे उस समय की दिव्य घटना है कि कुछ सत्संगी श्री चरणों में सत्संगार्थ उपस्थित थे। अकस्मात् प्रसंग चला कि श्री प्रभुजी अपने देशान्तर गमन की इच्छा प्रकट की। प्रभु–प्रेमी भक्तों पर यह बड़ा आघात था और वे अपने प्यारे श्री प्रभुजी को बिछोह

को सहन नहीं कर सकते थे। सभी ने श्री प्रभुजी से देशान्तर–गमन से रोक के लिए अत्यन्त विनयपूर्वक प्रार्थना की। किंतु श्री प्रभुजी को यह स्वीकार नहीं था। वे जाना ही चाहते थे। लोगों के मन में यह पूरी तरह बैठ गया था कि आज श्री प्रभुजी कहीं न कहीं अवश्य चले जायेंगे। इसी भ्रांति के वशीभूत होकर जिस समय श्री प्रभुजी अपनी समाधि के अभ्यास के लिए गुफा में चले गये उसी समय बाहर चबूतरे पर बैठे रहने वाले सत्संगियों ने बाहर से ताला लगा दिया, कि प्रभुजी कहीं रात में चुपचाप कहीं न चले जायें, और सुबह होते ही श्री प्रभुजी के बाहर निकलने के पूर्व हम ताला खोल देंगे। किंतु उन लोगों की भावना पूर्ण नहीं होने पाई। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी रात्रि को ही **अणिमा–सिद्धि** के प्रयोग से गुफा से बाहर निकल गये और आकाशमार्ग से उड़कर जा रहे थे तो सवाई गांव के खेतों में सूखा नाम का धीमर हल चला रहा था। उसने देखा श्री प्रभुजी आकाश मार्ग से कहीं जा रहे हैं, पहले तो बड़ा भयभीत हुआ, क्योंकि उसके सामने प्रथम दृष्टया दृश्य था उसने आकाश में उड़ते हुए व्यक्ति को देखा। उसने सोचा कि यह क्या कोई मनुष्य है या यक्ष, किन्नर या देवता है। जब उसे डरा हुआ देखे तो श्री प्रभुजी बोल उठे और कहा– 'अरे सूखा, हम गुफा वाले बाबा हैं, क्या तू डर गया। तुझे डरना नहीं चाहिए।' श्री प्रभुजी की वाणी को सुनकर थोड़ा धैर्य हुआ। उसे सान्त्वना देकर श्री प्रभुजी आकाश–मार्ग से चले गये। प्रातः काल होने पर सत्संगी लोग इधर–उधर से आये गुफा द्वार का ताला खोलकर भीतर जाने की चेष्टा की किंतु उन्होंने आश्चर्य से देखा कि भीतर से सकुली बन्द है। उन सब ने सोचा कि सम्भवतः श्री प्रभुजी अन्दर समाधि में हों। किंतु काफी विलम्ब हो जाने पर गुफा का द्वार तोड़कर अन्दर घुसकर देखा कि श्री प्रभुजी वहाँ नहीं हैं। किंतु गुफा में एक आवाज आई– बेटा तुमने हमें यहाँ हठात् रोकना चाहा था इसलिए अब हम यहाँ से चले गये हैं। इस समय तो तुम सबको हमारे दर्शन नहीं हो सकते। बारह वर्ष के बाद पुनः लौट कर आयेंगे। तुम लोग पहचान सको तो पहचान लेना। ऐसा ही हुआ भी। पुनः आनन्दकन्द श्री प्रभुजी आये और अपनी अनुग्रह कृपा के फलस्वरूप इन लोगों को परिचय करा दिया। यह आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की अणिमा सिद्धि एवं आकाशगमन का प्रमाण है।

अन्ततः आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के प्राकट्य तिथि पर उन्हीं के चरण कमलों में साष्टांग कोटिशः नमन,

यस्य प्रसादात् पतितास्सुपावना, भवन्ति संसार सुतारणाशिशया:।

योगीश्वराणां परमेश्वरम् हरिं, श्री रामलालः प्रभुमीशमाश्रये।।

अर्थात् जिसकी कृपा के एक कण को पाकर के अत्यन्त पतित भी परम पवित्र होकर संसार सागर से तारने की सामर्थ्य वाला हो जाता है, मैं उन परमेश्वरों के ईश्वर प्रभु आनन्दकन्द योगयोगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज को बार–बार नमस्कार करता हूँ।

योगिश्वर श्री रामलाल जी की सर्वशक्तिमत्ता

अवनीश भटनागर, सहारनपुर

बर्फ से ढके हिमालय के ऊँचे शिखरों पर सूर्य के स्वर्णिम प्रकाश की आभा पड़ने से वह स्वर्णमयि पर्वत दृष्टिगोचर होता है। सुमेरू गिरी के इसी शिखर पर अवस्थित है सिद्ध आश्रम के अधिपति परम योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी जो अपनी अखण्ड मण्डलाकार तेजोराशि से ज्योतिर्मय बनाने वाले है और पतित से पतित जीवों का आत्म उत्थान कर सिद्ध श्रेणी में पहुँचा सकने में समर्थ महाप्रभु हैं। वे चाहें तो तत्काल किसी भी जीव को बड़ी से बड़ी शक्ति खेल ही खेल में प्रदान कर दें व त्रिलोकी में चाहे जहाँ किसी भी क्षण पहुँच जायें। उनकी सर्वत्र अबाध गति है। अपने संस्कारी जीवों को दिव्य योग समाधि का दान देने की इच्छा से संसार में अपना प्रादुर्भाव दर्शाया वास्तव में तो वह हिमालय में आज भी पूर्व की भांति ही असली शरीर से विद्यमान हैं। संसार के जीवों को परम कृपा में सिद्धयोग विद्या का प्रसाद देने के लिए उन्होंने अपने अनेक शरीरों की रचना की और मानव बस्तियों में उतर आये, जिन परम संस्कारी जीवों को उनका साक्षात्कार एवं कृपालाभ प्राप्त हुआ उन्होंने उनको अनेक नाम व शरीर आकृतियों से परिभाषित किया जैसे योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी, स्वामी श्री मुलखराज जी ने आनन्दकन्द महाप्रभु श्री रामलाल जी के नाम रूप से और श्यामाचरण लाहिड़ी जी श्री श्री महाअवतार बाबा जी के नाम रूप में, कहीं सर्वदानन्द जी के नाम रूप में, कहीं बाबा लाल दास जी के नाम रूप में, कहीं भगवान मत्स्येन्द्र नाथ जी के नाम रूप में जगत ने इनको जाना। परम कृपा निकेतन सिद्धेश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी उस आधारभूत परब्रह्म महाशक्ति का साकार विग्रह है, जिस परम शक्ति ने समय-समय पर अनेकों अवतार लिये अवतारों के अधिकार एवं शक्लें बदलती रहीं। परब्रह्म शक्ति अधिकार भेद से एक ही क्रिया शील है। वास्तव में हम शक्ति के ही उपासक हैं। हमें यह परम शक्ति जहाँ भी दिखाई देती है। हम उसकी उपासना करते हैं। जय जयकार करते है। उसको तत्वत: जानते हैं या नहीं जानते यह अलग बात है। हमें शूकर के रूप में वह शक्ति दिखाई दी, हमने उसकी उपासना की और नाम दिया वाराह भगवान पर हम सारे शूकरों की उपासना नहीं करते केवल उसी शूकर की करते हैं, जिसमें उस परम शक्ति का परिचय हुआ। ऐसे ही कच्छप, हंस, कूर्म, मत्स्य, हनुमान, नृसिंह आदि सभी विग्रह इसलिए पूजित हैं। जै जैकार उसी रूपक की होती है जिसमें वह परब्रह्म महाशक्ति प्रकट होकर अपना परिचय देती है, और कहा भी है-

सब घट मेरा सांइया, खाली घट ना कोये, बलिहारी वा घट के, जा घट प्रगट होय

परम सिद्धेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी एवं योगेश्वर सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन

महाप्रभु जी के रूप में वह आधारभूत परब्रह्म महाशक्ति जगत में विराजित रही। 92 चातर्य कल्पों के बाद ऐसा परम कल्याणकारी रूपक उस सर्वशक्तिमान परब्रह्म सद्गुरु परम तत्व ने धारण किया जो श्री श्री रामलाल महाप्रभु जी के रूपक में नित्य क्रियाशील है। उनके सामने देवी देवताओं अवतारों पैगम्बरों के अधिकार सीमित हैं। लोकाधिपतियों की भी सीमायें हैं। सभी लोक लोकान्तरों में श्री रामलाल महाप्रभु जी की अबाधगति है। वे जिस भी लोक लोकान्तर में चले जाते हैं। वहीं के लोकाधिपति उनकी आरती पूजा व जै जेकार किया करते हैं क्योंकि वह उस आधारभूत महाशक्ति सद्गुरु परमतत्व के साकार विग्रह हैं, जो समस्त चराचर जगत व देवी, देवताओं, अवतारों के अन्दर अंश व न्यूनाधिक मात्रा में प्रकाशित है और श्री श्री रामलाल महाप्रभु परिपूर्ण परब्रह्म है। श्री रामलाल महाप्रभु जी के लीला चरित्रों में आता है कि ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी महाराज ने एक समय ध्यान में दर्शन किये। उस समय वह गोलोक धाम में एक दिव्य सिंहासन पर विराजमान दिखाई दिये। वहाँ ऋषि समाज, देव समाज, देवी समाज, ऋषि कन्यायें आदि सभी विद्यमान थे और आनन्दकन्द भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी स्वयं उनकी आरती उतार रहे थे और जानते हो वह मुख से क्या बोल रहे थे।

'चरणारविन्दं गुरुदेव नमामि, गुरुदेव शरणं गोविन्द नमामि' अर्थात गुरुदेव के चरणों में मैं नमन करता हूँ। गुरुदेव की शरण प्राप्त मैं गोविन्द (श्रीकृष्ण) गुरुदेव को नमस्कार करता हूँ। अनेक बार ऋषिकेश आश्रम में ध्यानी लोग श्री रामलाल महाप्रभु जी से ध्यान में देखकर यह बताते थे कि महाप्रभु जी आपकी आरती सभी देवी देवता कर रहें हैं तो श्री रामलाल महाप्रभु उत्तर देते थे कि अरे (अपने शरीर की ओर संकेत करके) यह इसकी बाहर वाले की नहीं अन्दर जो प्रकाशित है उसकी आरती पूजा कर रहे हैं अर्थात् वह परब्रह्म अनादि महाशक्ति जो श्री रामलाल महाप्रभु जी के रूप में हमारे सामने प्रकाशित है। भले ही श्री रामलाल महाप्रभु कितने भी साधारण दिखाई देते रहें या लौकिक लगते हों पर वास्तव में उसी परम तत्व की आरती करते हुए भगवान श्रीकृष्ण चन्द जी कहते हैं ***भूतेश प्रणम्यं अनन्तं स्वरूपं, भक्तस्यत्राणं गुरुदेव नमामि*** अर्थात् भूतेश यानि भगवान शंकर भी जिनको प्रणाम करते हैं से भक्तों को दुःखों से परित्राण देने वाले गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

महाप्रभु रामलाल जी का रूपक ऐसा है कि उन्होंने संकल्प पूर्वक अपने को प्रायः जन मानस के सामने प्रकट ही नहीं किया अपने को छिपाये ही रखा और उसी छिपे वेश में सारे अलौकिक दिव्य सिद्धकृपा कार्य करते रहे। भगवान श्री कृष्ण चन्द इसलिए श्री रामलाल महाप्रभु जी की दिव्य आरती में आगे कहते हैं ***घटाकाश गुप्तं महाकाश रूपं चिदाकाश व्याप्तं गुरुदेव नमामि*** कि वह परम अनन्त महाकाश ब्रह्मशक्ति श्री रामलाल महाप्रभु जी के शरीर रूपी घट में समाहित है। इस रहस्य को कम ही लोग जान पाये। परन्तु घोर आश्चर्य की बात है कि उन्होंने अपने स्वरूप को दुनिया को दिखा कितना रखा है। मात्र इतना ही कि जितना आकाश हमें आँखो की पुतलियों में दिखाई देता है। इसलिए ऐसे परम विराट

सदगुरुदेव महाप्रभु श्री राम लाल जी जिन्होंने अपने को अणु मात्र ही जगत में दर्शा (दिखा) रखा है उनको मेरा (श्रीकृष्ण) का नमस्कार है।

यह उस महान दिव्य आरती के अंश हैं जो श्री रामलाल महाप्रभु जी की गोलोक धाम में भगवान श्री गोविन्द (श्रीकृष्ण) नित्य करते हैं। साक्षात् श्री कृष्ण हमारे पूज्य चरण सदगुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी इसी आरती को इस भूलोक में नित्य करते रहे। आगे उनकी संकल्प शक्ति के द्वारा शक्ति संचार में आये हुए उनके बालक इस परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं। इस आरती के करने के पश्चात् कोई और लौकिक या मनुष्यों द्वारा रचित आरतियाँ करने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं रह जाती।

जिसका जीवन सुन्दर है, शुभ है– वही वास्तव में सुन्दर है। परंतु जिसकी केवल बातें ही सुन्दर हैं, जीवन कलुषित है, वह पूरा कलंकी है। उसकी सुन्दर बातें वैसी ही हैं, जैसे–जहर से भरे घड़े के ऊपर का दूध अथवा मल से भरा हुआ चमकीला मटका।

प्रतिक्षण अपने को देखते रहो, मन में जरा–सा भी दोष दिखाई दे तो उसे निकालने की कोशिश करो। तुम्हें फुरसत (अवकाश) नहीं मिलनी चाहिए अपने सुधार से। जब तुम सचमुच सुधर जाओगे, तब तुम्हारे बिना बोले ही तुम्हरा जीवन न केवल जगत् को सीख देगा, बल्कि यदि उस हालत में तुम एकान्त में भी रहोगे, तो भी तुम्हारे अन्दर के सद्‌गुणों के सुवास से जगत से सुख और कल्याण प्राप्त होगा।

दूसरे लोगों के साथ तुम वैसा ही व्यवहार करो, जैसा तुम दूसरों से अपने लिये चाहते हो। सबमें उनके गुणों को देखो और अभिमान छोड़कर नम्रता के साथ उन्हें ग्रहण भी करते चलो।

जैसे धन का लोभी चुपचाप धन कमाने में लगा रहता है, वह धन के लिए व्याख्यान नहीं दिया करता, वैसे ही चुपचाप दैवी गुणों की सम्पत्ति कमाने में लगे रहो। न तो ढिंढोरा पीटो और न केवल बात बनाने में ही जीवन बिताओ। बात बनाने वाले कहीं के नहीं रहते।

गुरु तत्व तथा उसका स्वरूप

जनक कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर

चैतन्यं, शाश्वतं, शांतं, व्योमातीतं, निरञ्जनम्।
बिन्दु नाद कलातीतं, तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

(गुरुगीता)

योग दर्शन में 'पूर्वेषामपि गुरु' कहकर आदि गुरु ब्रह्म को बताया है और 'तस्य वाचक प्रणव' अर्थात् ओम् है। ओम् ही ब्रह्म का वाचक है। वह ब्रह्म ही चेतन है। उसी की चेतनता से सारा ब्रह्माण्ड संचालित हो रहा है। यही ब्रह्म शाश्वत अर्थात् अनादि काल से और अनन्त काल तक सदा एक रस शान्त रहता है। वह असीम और भूताकाश, महाकाश से भी परे चिदाकाश है।

गुरु गीता में माता पार्वती ने भगवान शंकर से पूछा–1. पिंड क्या है? 2. पद क्या है? 3. रूप क्या है? 4. रूप से अतीत क्या है? भगवान शंकर ने उत्तर दिया कि पिंड कुंडलिनी शक्ति है। पद हंस कहलाता है। बिन्दु को रूप कहते हैं और रूप से अतीत निरंजन कहलाता है। वह निरंजन ब्रह्म पंच क्लेशों कर्म विपाक आदि से रहित है। वह बिन्दु ही ब्रह्म का प्रथम सूक्ष्म रूप है तथा वह नाद और कलाओं से भी अतीत है।

बिन्दु–ब्रह्माण्ड का सबसे बड़ा आश्चर्य ब्रह्माण्ड का जन्म है, जो एक विस्फोट से हुआ है। विस्फोट से पूर्व समस्त ब्रह्माण्ड एक बिन्दु में समाया हुआ था। वह बिन्दु अत्यन्त छोटा था और उससे उत्पन्न ब्रह्माण्ड कितना बड़ा और विराट था। ''रोम–रोम प्रति राजे कोटि कोटि ब्रह्माण्ड।'' एक बार ब्रह्म जी विष्णु से मिलने गये तो वहाँ उन्होंने उनसे महान और बड़े अनेकों ब्रह्मा देखे। यही सबसे बड़ा आश्चर्य है कि उस सूक्ष्म बिन्दु से करोड़ों ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति हुई। 'रूपं बिन्दुरितिज्ञेयं और रूपातीत निरंजनम्' है। यही बिन्दु गुरु गीता के अनुसार ब्रह्म का प्रथम रूप है।

भारतीय ऋषियों और चिंतकों ने ब्रह्माण्ड के रहस्यों को खोलने में अपनी अन्तर्दृष्टि का उपयोग कर अद्भुत मिथिक दिये हैं। भारतीय शास्त्रों में ब्रह्म का एक नाम विराट, विस्तार और विस्तृत भी है। मुण्डकोपनिषद् में 'तपसा चीयते ब्रह्म (1–1–8) कहा है अर्थात् वह परब्रह्म परमेश्वर अपने संकल्प रूप तप से विस्तार को प्राप्त होता है और फिर नाना रूपों वाली सृष्टि का निर्माण होता है।

वैज्ञानिक हबल के अनुसार ब्रह्माण्ड का समस्त पदार्थ एक सुई की नोक से भी अत्यन्त छोटे बिन्दु में समाहित था। सुई की नोक के बराबर बिन्दु के करोड़ के करोड़ों हिस्से

से भी छोटा वह बिन्दु था। कठोपनिषद् में 'अणोरणीयान्महतोमहीयान' (1–2–20) में ब्रह्म के अणु से अणु और महान से भी महान रूप में विस्तार होने का प्रमाण है।

वैज्ञानिकों के विस्तारी सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड की सीमा का विस्तार निरन्तर हो रहा है। इसी कारण भारतीय मनीषियों ने ब्रह्म को व्योमातीत अर्थात् असीम कहा है। इसी कारण ब्रह्माण्ड असीम अनादि और अनन्त है।

भगवान शंकर ने कहा कि कुण्डलिनी मेरी महाशक्ति है। यह मूलाधार चक्र में कूर्म नाड़ी में सुप्तावस्था में साढ़े तीन लपेटों के साथ स्थित है। अत्यधिक भजन और गुरु कृपा के द्वारा इसका जागरण होता है। इसके जागने पर मूलाधार में पृथ्वी तत्व का साक्षात्कार होता है। पृथ्वी तत्व का सूक्ष्म तत्व गंध तन्मात्र है। इस समय साधक को पर्वत, वृक्ष आदि दिखते हैं।

जिस समय यह शक्ति स्वाधिष्ठान चक्र में पहुँचती है, तब जल तत्व का साक्षात्कार होता है। जल तत्व का सूक्ष्म तत्व रस है।

जिस समय यह महाशक्ति मणिपूरक चक्र में पहुँचती है तब अग्नि तत्व का साक्षात्कार होता है।

ध्यान रहे जल तत्व के साक्षात्कार में समुद्र, नदियाँ आदि दिखते हैं और अग्नि तत्व के साक्षात्कार में लाल रंग साधक को दृष्टिगोचर होता है।

अनाहत चक्र में जब यह शक्ति प्रवेश करती है तब नाद का उदय होता है। इस नाद को अनहद नाद भी कहते हैं। कालान्तर में निरन्तर साधना के बाद गुरु कृपा के द्वारा यह नाद साधक में स्थाई रूप ले लेता है। इस समय साधक को विभिन्न प्रकार की ध्वनियां सुनाई देती हैं। कभी झींगुरों की सी ध्वनि तो कभी बांसुरी जैसी ध्वनि सुनाई देती है। मेघ नाद को मनीषियों ने सर्वोत्तम नाद कहा है।

गणेशपुरी के योगी मुक्तानन्द जी ने अपने गुरु नित्यानन्द से कहा कि मेरी आज्ञा चक्र में हल्की पीड़ा होती है तथा ब्रह्मरन्ध्र में कुछ गर्माहट हो जाती है साथ ही गर्दन के पीछे के हिस्से में दर्द होने लगा है। गुरुदेव ने कहा कि कुछ दिन अभ्यास के बाद यह ठीक हो जायेगा। क्योंकि कुण्डलिनी गुरु स्थान में प्रवेश कर चुकी है।

नाद–ब्रह्म के 'एकोऽहम बहुश्याम्' अर्थात् एक से अनेक होने का संकल्प करने से अव्यक्त मूल प्रकृति में क्षोभ (हलचल) हुआ। हलचल होने से मूल प्रकृति के गुणों में विस्फोट हुआ और विस्फोट होने से नाद की उत्पत्ति हुई जिसे प्रणव या ओम् कहते हैं। ऋग्वेद के दशम स्कन्ध में हिरण्यगर्भ में भी कहा गया है। यही प्रणव सारी सृष्टि का बीज है। प्रणव ब्रह्म का अति सूक्ष्म रूप है तथा नाद प्रणव की अपेक्षा स्थूल रूप है।

कला – हठयोगी राजर्षि मुनि (गुजरात) के अनुसार कलाओं का वर्णन–

1. स्थावर वस्तुओं में जैसे पर्वत	1 कला
2. जंगम अर्थात् वनस्पतियों में	2 कलाएं
3. स्वेदज योनि के जीवों में	3 कलाएं
4. अण्डज योनि के जीवों में	4 कलाएं
5. जरायुज (पशुओं में) योनि के जीवों में	5 कलाएं
6. जरायुज योनि के तामस मनुष्यों में	6 कलाएं
7. जरायुज योनि के राजसी मनुष्यों में	7 कलाएं
8. जरायुज योनि के सतोगुणी मनुष्यों में	8 कलाएं
9. लौकिक पितरों तथा प्रथम कल्पित योगी	9 कलाएं
10. स्वर्ग के देवता और मधुभूमियों के योगी	10 कलाएं
11. प्रजापति, ऋषि मुनि और प्रथम प्रज्ञा ज्योति योगी	11 कलाएं
12. विरक्त ब्रह्मवादी देव और जीवनमुक्त योगी	12 कलाएं
13. भास्कर देवों और ऊर्ध्वरेता योगी	13 कलाएं
14. लिंग देही प्रधान वशीदेव और सिद्ध योगी	14 कलाएं
15. ईश्वर के अंशावतार और पूर्ण योगी	15 कलाएं
16. ईश्वर के पूर्ण अवतार	16 कलाएं

राजयोगी स्वामी ओमानन्द जी तीर्थ के अनुसार

- अष्टधा प्रकृति
- षोडषा विकृतियां

आठ प्रकृतियां – (1) अव्यक्त मूल प्रकृति (2) महतत्व (3) अहंकार (4) अहंकार के तमोगुण से उत्पन्न हुई – 1. शब्द 2. स्पर्श 3. रूप 4. रस और 5. गंध

सोलह विकृतियां – अहंकार के रजोगुण से उत्पन्न विकृतियां–

(1) वाक (2) हस्त (3) पाद (4) उपस्थ (5) गुदा

अहंकार के सतोगुण से उत्पन्न विकृतियां–

1. कान 2. त्वचा 3. आँख 4. जीभ 5. नाक तथा एक मन

इस प्रकार विकृतियों की संख्या

कर्मेन्द्रियां	5
ज्ञानेन्द्रियां	5
तन्मात्राएं	5
मन	1
	16

प्रश्नोपनिषद में भारद्वाज पुत्र शुकेसाने पिप्पलाद ऋषि से सोलह कलाओं वाले पुरुष के विषय में पूछा–

महासर्ग में जगत की रचना करने वाले ब्रह्म ने विचार किया कि 'जिस ब्रह्माण्ड की रचना मैं करना चाहता हूँ, उसमें एक ऐसा कौन सा तत्व डाला जाय कि जिसके न रहने पर मैं स्वयं भी उसमें न रह सकूँ अर्थात् मेरी सत्ता स्पष्ट रूप से व्यक्त न रहे और जिसके रहने पर मेरी सत्ता स्पष्ट प्रतीत रहे।

यह सोचकर ब्रह्म ने सबसे पहिले–

1. प्राण की रचना की, 2. श्रद्धा, 3. आकाश, 4. वायु, 5. अग्नि 6. जल 7. पृथ्वी 8. मन 9. इन्द्रियां 10. अन्न 11. वीर्य या शक्ति 12. तप 13. मन्त्र 14. कर्म 15. लोक 16. लोकों के नाम – कुल 14 लोकों की रचना की – 7 लोक पृथ्वी के ऊपर और 7 लोक पृथ्वी के अन्दर समुद्र तल में।

इस प्रकार सोलह कलाओं से युक्त इस ब्रह्माण्ड की रचना करके जीवात्मा के सहित ब्रह्म स्वयं उसमें प्रविष्ट हो गया। इसलिए वह ब्रह्म सोलह कलाओं वाला कहलाया।

प्रेम, सहानुभूति, सम्मान, मधुर वचन, सक्रिय हित, त्याग और निश्छल सत्य के व्यवहार से ही तुम किसी को अपना बना सकते हो। तुम्हारा ऐसा व्यवहार होगा तो लोग तुम्हारे लिए बड़े–से–बड़े त्याग करने–हेतु तैयार हो जायेंगे। तुम्हारी लोकप्रियता मौखिक नहीं होगी। तुम्हारे लिए लोगों के हृदयों में बड़ा मधुर और प्रिय स्थान सुरक्षित हो जायगा। तुम भी सुखी हो जाओगे और तुम्हारे सम्पर्क में जो आयेंगे, उनको भी सुख–शान्ति मिलेगी।

ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप

डॉ. वीरेन्द्र स्वरूप ब्रह्मचारी

ईश्वर प्राप्ति का आधार प्रेम है, यदि ईश्वर के प्रति हमारे अन्तःकरण में, मन में प्रेम उत्पन्न हो जाय तो बात बन जायेगी, तब न समझ में आने वाला समझ में आ जायेगा, वह परमात्मा कैसा है, किस प्रकार से स्थित है दीखने लगेगा, जब वह सतत् दीखने लगेगा तब धीरे–धीरे हम उसमें प्रवेश करने लगेंगे। हमारा मन उनमें लय रहने लगेगा। जगवाला श्रीकृष्ण ने अपने विराट रूप का दर्शन अर्जुन को कराने के बाद अर्जुन से कहा– देखो अर्जुन! मेरे इस विश्वरूप विराट दर्शन को कोई व्यक्ति वेदों के अध्ययन से नहीं प्राप्त कर सकता, तप के द्वारा भी नहीं दर्शन प्राप्त होगा, दान के प्रभाव से भी वह नहीं प्राप्त कर सकता और न ही कोई यज्ञों का अनुष्ठान करके ही प्राप्त कर सकता है– मेरी प्राप्ति तो केवल अनन्य, एक निष्ठ भक्ति के द्वारा ही हो सकती है।

तुम अपने मन और बुद्धि को मेरे अन्दर लगा दो अर्थात् मेरे स्थूल आकृति का गहन चिन्तन और मनन करो, मन को किसी अन्य विषय में जाने ही मत दो, यदि तुम ऐसा कर सके तो तुम मेरे अन्दर ही रहोगे, यदि तुम ऐसा नहीं कर पा रहे हो तुम मेरा ध्यान करो क्योंकि **ध्याने–ध्याने तद्‌रूपता** ध्यान के अभ्यास से धीरे–धीरे तद्‌रूपता प्राप्त हो जाती है। अनन्य निष्ठा होने पर तद्‌रूपता दिन–प्रतिदिन प्रगाढ़ होती चली जाती है।

अस्तु, हमारा लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति के लिए एक अनन्यनिष्ठा का है। वह कैसे प्राप्त हो? हमारा मन श्रेष्ठता का पुजारी है, वह हमेशा श्रेष्ठ को ही चाहता है, पूरा ही चाहता है, अधूरा और निम्न उसे स्वीकार ही नहीं, जगत में जहाँ कहीं मन जाता है, वहाँ वह टिकता नहीं क्योंकि उस वस्तु या व्यक्ति से उसे कुछ और ही वस्तु अथवा व्यक्ति श्रेष्ठ और पूर्ण दिखाई देने लगता है। अतः एक वस्तु से दूसरी वस्तु और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में कुछ समय के लिए जाकर टिक जाता है किंतु स्थायी टिकाव नहीं बन पाता क्योंकि इस जगत में प्रत्येक वस्तु अथवा व्यक्ति अपनी पूर्णता की ओर अग्रसर है, अधूरा है। सारे उपनिषद्, शास्त्र आदि का विलोडन करने पर एक निष्कर्ष पर हम पहुँचते हैं कि संसार की गति, स्थिति और विनाश का नियमन कोई एक शक्ति अवश्य कर रही है और उस शक्ति का भी कोई न कोई नियामक अवश्य है क्योंकि गति, स्थिति और विनाश की शक्ति निर्धारित सी लगती है। संसार में तो पर से भी पर वस्तु निराधार दिखती है क्योंकि उससे भी परे कुछ और ही प्रतीत होता है। उपनिषद् आदि सभी सद्‌गुरु के आगे मौन हो जाते हैं, यह कह कर कि –

नास्ति तत्वं गुरोः परम्।

अत: 'सद्गुरु' को शास्त्रों के द्वारा श्रेष्ठतम जानकर मन को ठहरने का सर्वोत्तम लक्ष्य प्रतीत होता है – सद्गुरु। यही वह अलख निरंजन सत्ता प्रतीत होता है। इसी की अनन्य भक्ति द्वाराहम ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। इसी के चिन्तन, मनन और ध्यान से हमारा 'ज्ञातुं द्रष्टुं और प्रवेष्टुम्' अर्थात् योग–समाधि प्राप्त हो सकती है तो आइये अनन्यभक्ति के प्राप्त्यर्थ 'श्री गुरुगीता गायन' की शरण में चलें–

ॐ श्री गुरुगीता गायन

गौरी शिव शंकर से पूछें, सद्गुरु कहो मुक्ति समुझाय

करूँ प्रणाम हे देवन्ह देवा, पर से पर तुम गुरु महान।

सदाशिव हे महादेव तुम, गुरुदीक्षा दे करो कल्यान।।

कौन से मार्ग कहो हे स्वामी, देही ब्रह्ममयो हो जाय...

वही कृपा करो हे देवा, तो हरे चरन मेरे नमन हजार।

देवी रूप मम रहो सदा तुम, तो हरी भक्ति मैं करूँ विचार।।

'गु' शब्द अंधकार कहावै, 'रु' प्रकाश जग छाय...

अज्ञान ग्रासक ब्रह्म स्वयं है, सद्गुरु संशय नाहिं।

लोक कहैं तेहि वेद कहैं, यज्ञदानतपोव्रततीर्थपराहिं।।

गुरुतत्व अनजान विमूढ़, स्वरग नरक भरमाय....

देही ब्रह्म होय कहुँ कैसे, सर्वपाप कैसे विनशाय।

सर्वतीर्थ अवगाहन फल नर, गुरु पादोदक पीकर पाय।।

शीश धरे पादोदक गुरु के, मानुष जन्म सफल हो जाय...

सद्गुरु कृपा से ब्रह्मा विष्णु, शिव बन जाते जीव महान।

गुरु ही शक्ति स्वयं भुवनेश्वर, अलख निरंजन परम महान।।

शास्त्र वेद सब भेद खोलते, गुरु महिमा जेहि हिये प्रगटाय...

गुरुध्यान को मूलाधारे, हिये पदे और भृकुटि समाय।

सहस्रार गुरु रूप अनोखा, सहस बरस शिष्य मनहिं लुभाय।।

गुरु ही पारब्रह्म परमेश्वर, चिन्मय तत्व लखाय...

घूँ घूँ करता काला भौंरा, कीड़े के सब दिशि भरमाय।
भ्रमर देखि-देखिकर कीड़ा, भ्रमर-ध्यान के बीच समाय।।
कीड़ा गहन समाधि में जाकर, स्वयं भ्रमर बन जाय...

भ्रमर सदृश गुरु घूं घूं करते, शिष्य को प्रतिपल घेरे रहते
सब दिशि कर्माणि देख गुरु को, गुरु- ध्यान के बीच समाय
सद्गुरु गहन समाधि देकर, शिष्य को लेते गुरु बनाय...

गुरु मूरति ही ध्यान-मूल है, वेद शास्त्र सब गावैं।
श्री गुरुचरन अर्चना-मूला, आगम निगम बतावैं।।
सद्गुरुपदनरव-ध्यान हिये में, दिव्य दृष्टि प्रगटाय....

गुरुवाणी ही मंत्र-मूल है, शेष शारदा गावैं।
ब्रह्मा विष्णु कहत नहिं थाकैं, शिवजी गोता लगावैं।।
जो गुरु - कृपा करें क्षण माहीं, जीव ब्रह्म हो जाय...

गुरु चरनन में सब तीरथ हैं, पर्वी रहत अखण्ड।
गुरु पादोदक पाप नशावन, ज्ञानदीप्ति व्यापै ब्रह्माण्ड।।
गुरु पादांकित शिर निश्चय ही, तीर्थराज बन जाय...

गुरु मूरति को ध्यान करो तुम, सद्गुरु नाम जपो दिन रात।
गुरु की आज्ञा पालन कीजै, गुरु से अन्य न भावै बात।
गुरु हैं तारक ब्रह्म विश्वेश्वर, गुरु मुखस्थ ब्रह्म मिल जाय....

गुरुमुख स्थित विद्या पावै, गुरु भक्ति जो रहे समाय।
गुरु ही एक मात्र हैं वक्ता, देवासुर पन्नग समुदाय।।
गुरु के सन्निधि लज्जा त्यागी, दीर्घ दण्ड नित नमन कराय...

करम वचन मन गुरु आराधै, तन धन नित ऐश्वर्य चढ़ावै।
जेहि दिशि श्री गुरु चरण विराजै, तेहि दिशि नमन करैं नित प्रातैं।।
श्री गुरु चरण-कृपा से प्राणी, स्वयं ज्ञान प्रगटाय...

गुरु के स्मरण मात्र से प्राणी, स्वयं ज्ञान उपजाय।

सदा सर्व सम्पत्ति को वासा, व्यापक सर्व गुरु से पाय।।

कहा कहाँ स्थावर जंगम सब, चर गुरु अचर समाय...

गुरु से अधिक न तत्व है कोई, गुरु से अधिक न तप है कोई।

गुरुज्ञान परतत्वज्ञान है, गुरु में रहता जगत समोई।

अनेक जन्म संप्राप्तकर्म, बन्धन गुरु रहे जलाय...

गुरु पादोदक महिमा भारी, शोषै भव सिंधु जाउँ बलिहारी।

दीपनज्ञानसंपदा आवै, सद्‌गुरु बार-बार बलिहारी।।

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर समरथ, गुरुकृपा गुरु सेवा पाय...

भूल न जिव ऐसे सद्‌गुरु को, कल्पांत की देह भी पाय।

गुरु का लोप कबहुं नहिं करिये, यदि स्वाच्छंद्य रहे मन भाय।।

सद्‌गुरु ध्यान करत नित प्राणी, यत्र तत्र ठहराय...

सभी देव मुनि शक्तिहीन हो, गुरुशापहत नष्ट होत हैं।

गुरुकृपा सब शक्तिमान हो, लीला जग प्रगटाय.....

गुरु से कबहुँ विवाद न जीतै, गुरु की महिमा सिर धरि लीजै

गुरु से हूँ तूँ करता प्राणी, ब्रह्मराक्षस ह्वै जाय....

देव किन्नर गंधर्व पितृ सब, चारण यक्ष मुनिजन समुदाय

गुरुशुश्रूषा विधि नहिं जानैं, ताते गिरैं संसारे आय।।

मदाहंकार गर्व तप विद्या, बलाधिका सब गये ठगाय।।

गुरु सेवा पराङ्मुख सबही, मुक्त न भये कहूँ समुझाय...

गुरु मूरति को ध्यान धरत ही, सभी संग जाते विनशाय।

गुरु कृपा से एकाकी बन, शान्तस्पृहारहित हो जाय।।

गुरु अत्यन्त ध्यान कर प्राणी, सच्चिदानन्दब्रह्म हो जाय...

गुरु से कबहुँ असत्य न बोले, सद्गुरु सब जानन हार।
अनुल्लंघनीया गुरु की आज्ञा, सर्व सम्पत्ति दातार।।
जेहि घट कपट छिद्रछल नाहीं, सद्गुरु तेहि घट में पधराएँ...

यह श्रद्धा सहजै बस जहवाँ, भूत पिशाच चोर नहिं तहवाँ।
ताकर सब स्थान है पावन, सब देवन्ह को वास है तहवाँ।।
वह देश पुण्य भाजन हो जाय, चिंतित कार्य सभी बन जाय...

जहँ जहँ जाय तहाँ तहँ पावन, सब देवन्ह को वास सुहावन।
गुरु में समाहित रमता जहँ तहँ, दिवा पवित्र हो रात सुपावन।।
गुरु-सन्तुष्टि ही मुक्ति देत सब, भोग-मोक्ष करतल ठहराय...

सद्गुरु आगे नमन करूँ मैं, सद्गुरु पीछे नमन करूँ।
सद्गुरु दायें नमन करूँ मैं, सद्गुरु बायें नमन करूँ।।
सद्गुरु ऊपर नमन करूँ मैं, सद्गुरु नीचे नमन करूँ।।
सद्गुरु सब दिशि नमन करूँ तुम्हें, सद्गुरु महिमा कही न जाय...

सद्गुरु बाहर नमन करूँ तुम्हें, सद्गुरु भीतर नमन करूँ।
सद्गुरु महिमा जान न पायउँ, गलती पग-पग जाय करूँ।।
सद्गुरु महिमा झलकै कैसे, कण-कण में प्रगटाय...

क्षमहुँ प्रभु अपराध क्षमहु अब, जग रिश्ते जो मान किये।
आलस बस अपराध किये जो, प्रेम विवश अपराध किये।।
क्षमहु प्रभु अब क्षमहु कृपाकर, श्री चरण-प्रीति दीजै मनभाय...

(ॐ श्री गीता गायन सम्पूर्णम्)

भौतिक भोग के इस युग में योग का अवलम्बन ही करेगा आपका कल्याण
उत्तम और सफल जीवन की एकमात्र विश्वसनीय कुंजी है योग !

योग-पथ पर बढ़ने हेतु सिद्धयोग की शरण लीजिए

सिद्धयोग

पढ़िये-
पढ़ाइये !

योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक-पत्रिका

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना –

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आवन्टन (स्थान चयन) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेंटिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु० 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु० 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14586. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा